

सीताराम सीताराम सीताराम

श्रीमिथिली रमणो विजयते

श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः

श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश

नाम-रूप-लीला-धामात्मक

पूर्वार्ध



संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
'सीताशरण'



सीताराम सीताराम सीताराम



❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक--पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशकः-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्री चारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण १०२५ प्रति

माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई०

न्यौछावर १५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी।

[इन पूर्वोक्त चतुर्व्युहों को यहाँ पर भगवद्धाम स्वरूप और धाम के प्रकाशक देवता स्वरूप में बताया गया है। और इससे परे द्विभुज एकमुखवाले परात्पर परमात्मा को शेषी, भोक्ता, रक्षक रूपमें वर्णन किया गया है] निश्चित रूप से श्री वैष्णवों का परम उत्पत्ति स्थान यही माना गया है। और सूर्यलोकके ही द्वारा अर्चिरादिमार्ग कहा गया है ॥ १५२ ॥ इसी मार्ग से श्री वैष्णव अपनी आत्मा के शेषी, भोक्ता, रक्षक परात्पर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। श्री वैष्णवों के लिये अन्यमार्ग या अन्य किसी भी लोक में रहने का स्थान नहीं है। यह बात यहाँ पर सनातनी श्रुतियों के द्वारा बताई गई है ॥ १५३ ॥ नोट—श्री वैष्णवों की ऐसी महिमा हैं, इसलिये संयम नियम सदाचार की क्या आवश्यकता हैं, मनमाने ढंग से सुख भोगना चाहिये, मरने के बाद तो श्री वैष्णव होने के सम्बन्ध से भगवान् कृपा करके भगवद्धाम देंगे ही । ऐसी भूल करनेवाला वैष्णव वैष्णवता से च्युत हो जायेगा। महान विपत्ति भोगनी पड़ेगी बहुत ही पछताना पड़ेगा। अस्तु अर्थपंचक ज्ञान के अनुसार ही श्री वैष्णव की वैष्णवता सुरक्षित रहती है। अन्यथा बहुत चक्कर काटना पड़ता है ॥ कर्मकाण्डियों की गति यमलोक के द्वारा ही है। और उनका पैत्रिक स्थान भी प्राकृतिक देवताओं के स्थान में वसु, रुद्र, के रूप से ही है ॥ १५४ ॥ परात्पर पुरुष परमात्मा को उपाय मानने वाले अनन्य श्री वैष्णवों के आराध्यदेव शुद्धरूप वाले केशवादि स्वरूप ही हैं ॥१५५॥ हे ब्राह्मण देवता ! श्री वैष्णव भक्त सभी कर्मों एवं सभी अवस्थाओं में सर्वदा के लिये चतुर्व्युहों के अतिरिक्त अन्य देवताओं को कभी न पूजें ॥ १५६ ॥

केशवादिममूर्तीनां पूजनंमुक्तयेमतम् । स्वर्गादिदिव्यभोगानां भुक्तयेऽन्ये प्रकीर्तिताः ॥ १५७ ॥ यद्यप्यन्यत्रलोकेऽस्मिश्चतुर्व्युहान्मनागपि । तथाऽपि नियमस्तानन्ययतोमार्गद्वयेद्विज ॥ १५८ ॥ पादलीला विभूतीनां सेवनं पादमुक्तये । त्रिपादविभूति सेवा तु मुक्तये नात्रसंशयः ॥ १५९ ॥ त्रिपादविभूतिगादेवा । विचिन्त्याऽऽत्मविभूतितः । महाभागवतैः पूज्याः शङ्खचक्रादि धारिणः ॥ १६०॥ अर्चिर्धूमविभागेनद्विधामार्गो निरूपितः अर्चिभागवतानां हि धूमाख्यः कर्मिणामतः ॥१६१ ॥ धूममार्गेण द्विधागतिः प्रोक्तः मनीषिभिः । दैवीपैत्रीति विख्याता दैवीस्वर्गगतिः स्मृता ॥१६२ ॥ अग्निष्वात्तादयोयत्र दिव्याश्च पितरोमता । मोदन्ते विविधैर्दत्तैभोगैः पुत्रादि निर्मितैः ॥१६३ ॥ कर्मणापितृलोके हि

गतिः पैत्रीह्युदाहृता । ज्योतिष्टोमादिभिर्दैवी गतिरुक्ताद्विजोत्तम ॥ १६४ ॥

अर्थ—हे मुने ! केशवादिक अव्यक्त मूर्तियों का पूजन तो मोक्ष के लिये माना जाता है । और स्वर्गादिक भोगस्थान के देवताओं का पूजन भोग के लिये अर्थात् स्वर्गतक स्थान की प्राप्ति के लिये ही कहा गया है ॥ १५७ ॥ हे ब्राह्मण देवता ! यद्यपि इन समस्त लोकों में चतुर्व्यूहों से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । तथापि (तोभी) भोग और मोक्षमार्ग के विधानानुसार ऐसा नियम बनाया गयाहै ॥१५८॥ कि एकपाद लीलाविभूति के देवताओंका सेवन (पूजन) तो अज्ञान अन्धकार दुख निवृत्ति के ही लियेहै । और त्रिपादविभूति स्वरूप देवताओं का पूजन तो मोक्ष के लिये ही है, इसमें संशय नहीं है ॥ १५६ ॥ जो शंखचक्र आदिक आयुधों के संस्कारों से भूषित हैं । ऐसे महाभागवत वैष्णवों द्वारा त्रिपादविभूति स्वरूप देवताओं का अपनी आत्मा की विभूति के रूप में अन्वेषण करने के लिये पूज्य हैं ॥ १६० ॥ अर्चिरादि मार्ग और धूममार्ग का निरूपण इस प्रकार है कि—अर्चिरादिमार्ग भगवत् भक्तों के लिये और धूममार्ग कर्मकाण्डियों के लिये माना गया है ॥ १६१ ॥ मनीषी विद्वानों ने धूममार्ग की गति को दो प्रकार से कहा है, एक दैविक और एक पैत्रिकमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है । इन दोनों में दैविक मार्ग को स्वर्गप्रद माना गया है ॥ १६२ ॥ जहाँ पर मरीचि के वंशज अग्निष्वात्तादि दिव्यदेवताओं को माना गया है । जहाँ पुत्रादिकों द्वारा विविध प्रकार के भोगों से पूजा दिये जाने पर वे पहुंचे हुये देवता आनन्दित होते हैं ॥ १६३ ॥ कर्मकाण्डियों के कर्मों की पितृलोक में ही पैत्रिकगति कही गई है । और हे ब्राह्मण श्रेष्ट ! स्वर्ग प्राप्ति का उपाय तो ज्योतिष्टोमादि यज्ञों को ही दैवीगति कहा गया है ॥ १६४ ॥

"द्वावम् पुनरावृत्तियुतौमार्गौ सनातनौ । आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोयतः ॥ १६५ । अर्चिरादिगतानां हि वैष्णवानां हरिः स्वयम् । गतिस्मृत्या विनिर्दिष्टा श्रुयाचापि द्विजोत्तम ॥ १६६ ॥ मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् । नाऽऽप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमांगतिम् ॥ १६७ ॥ सूर्यमण्डल माविध्य भित्वाऽऽवरण संहितम् । आप्लुत्य विरजातोये नित्यान्मुक्तान्समेत्य च ॥ १६८ ॥ स्वधारं विरजंब्रह्म गुणातीतम–नामयम् । शुद्धं महाविभूतीशं वासुदेवाख्यमद्वयम् ॥ १६९ ॥ प्राप्नुवन्ति महात्मानो महाभागवताद्विजाः । नावर्तन्ते पुनस्तस्मात्तन्स्थानान्योऽजाय च ॥ १७० ॥ एवं कर्मणि मन्त्रेषु वेदेषु यजनेषु च । सर्वात्म केऽपि संप्राप्तो भेदः सर्वात्मनः द्विज । १७१ ॥ प्राप्ये भोग्ये यतोभेदो नित्यानित्य विभेदतः । विवेकार्थं पुनस्तावदनिरुद्धो निरूप्यते ॥ ॥ १७२ ।"

अर्थ—यह दोनों मार्ग सनातन से ही पुनरावृत्तिवाले कहे गये हैं। क्यों कि ब्रह्मलोक से लेकर समस्त लोक पुनरावृत्ति वाले ही हैं ॥ १६५ ॥ और वैष्णवों की तो अर्चिरादि मार्ग द्वारा स्वयं भगवान् ही गति माने गये हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ट ! ऐसा वेदों की श्रुतियों के द्वारा कहा गया है ॥ १६६ ॥ मुझको प्राप्त हुये भक्त इस दुख के समुद्र नाशवान संसार में फिर से जन्मधारण नहीं करते हैं। क्यों कि वे महात्मा सम्यक् प्रकार (भली भाँति) सिद्धि को प्राप्त करके महान परात्पर गति को प्राप्त हो जाते हैं ॥१६७ ॥ उनका मार्ग सूर्य मण्डल को भेदन करके ब्रह्माण्ड के सभी आवरणों को पार करके और विरजानदी में स्नान करके नित्य और मुक्त पार्षदों से मिलकर ॥ १६८ ॥ वासुदेव नामक अद्वितीय परात्पर महाविभूति के स्वामी शुद्ध स्वरूप स्वयं अपने ही आधार से रहनेवाले माया के प्रेरक गुणातीत ब्रह्मको ॥१६९॥ वे महाभाग्यशाली महात्मा ब्राह्मण (भगवत् भक्त) प्राप्त होते हैं फिर वहाँ से लौटकर संसार में जन्म नहीं लेते हैं। क्यों कि उन परमात्मा के अतिरिक्त मोक्ष के लिये और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। १७० ॥ 'श्री ब्रह्मा जी ने ऋषियों से कहा कि—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! यद्यपि मैं सबकी आत्मा हूँ। तथापि इस प्रकार का यह भेद कर्मों में मन्त्रों में वेदों में यज्ञों में मुझे प्राप्त हुआ है। १७१ । जहाँ से नित्य और अनित्य का भेद अलग अलग किया जाता है। प्राप्यपरमात्मा और भोग्यआत्मा में भी भेद जहाँ से निरूपण किया जाता है। इस प्रकार के विवेक के लिये आत्माको अनिरुद्ध रूप में कहा जाता है ॥ १७२ ॥

*** श्रीबृहद्ब्रह्मसंहितापाद दो अध्याय चारमें श्रीअयोध्याजीका पृ० ६६ में वर्णन ***

"तथैव सरयूपुण्या यत्र कुत्रावगाहिते। विशेष ममक्षेत्रे त्वयोध्यायां मनीषिभिः ॥ ८८ ॥ क्षेत्राणि भारतेवर्षे पुर्यश्च बहुणोविधे। स्नानध्यान जपाभ्यासान्मत्प्राप्तिर्यत्र निश्चिता ॥ ८९ ॥ पुनः—पाद तीन अध्याय एक के श्लोक सैंतीस पृ० ८४ ८५ में ब्रह्मात्मकमिदंसर्वं चिदचिन्मिश्रितंजगत्, विज्ञायाऽऽत्मनि मय्येवकृतभाव तु यः पुमान ॥ ३७ ॥ अविद्यातिमिरंतीर्त्वा मद्भावमुपलभ्यच। मामुपैतिमहाभाग मदेकशरणागतः॥३८॥ स एतां त्रिगुणां मायामचिरादिगतिंगतः। भित्त्वा स कार्यां मतिमान्याति सत्त्वगुणास्पदम् ॥ ३९ ॥ नित्यमप्राकृतंधाम स्वप्रकाशमनामयम्। भृत्यैकलभ्यममलं कालप्रलयवर्जितम् ॥ ४० ॥ नतद्भासयतेसूर्यो न शशाङ्को न पावतः। यद्गत्वाननिवर्तन्ते तद्धामपरमंमम ॥ ४१ । मायिकं यन्मयाप्रोक्तं निविडध्वान्तसंकुलम्। तस्योर्ध्वभागे विरजा निः सीमा विद्यते नदी । ४२ ॥

अर्थ—उसी प्रकार श्री सरयू जी में भी जहाँ कहीं भी स्नान करने से पुण्य-प्रद हैं। विशेष करके मेरे निजक्षेत्र अयोध्याजी में अधिक फलदेनीहैं। यह मान मनीषी (आत्मतत्त्व विचारक) लोग जानते हैं ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मा ! भारतवर्ष में पवित्रक्षेत्र और नगरियाँ बहुत सी हैं। जहाँ स्नानध्यान जपके अभ्यास से मेरी प्राप्ति निश्चित है ॥ ३६ ॥ यह सम्पूर्ण जगत जड़चेतन मिश्रित ब्रह्मात्मक है। जो पुरुष ऐसा जानता है, वह अपनी आत्मा के अन्दर मुझमें ही भाव रखता है ॥ ३७ ॥ अतः मेरे भावको प्राप्त करके वह भाग्यशाली अनन्य शरणागत हुआ अविद्या अन्धकार को पार करके मुझको प्राप्त करता है ॥३८॥ वह वैष्णव इस त्रिगुणमयी माया को अर्चि-रादि मार्गद्वारा पार करके शुद्धसच्चिदानन्द गुणधाम में वह बुद्धिमान अपने भावा-नुसार जाता है ॥ ३९ ॥ क्यों कि वहधाम अनामय, नित्य, अप्राकृत, स्वयंप्रकाशमान काल और प्रलय आदिक प्राकृतिक दोषों से रहित निर्मल भाव एवं अनन्यभक्ति द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है ॥ ४० ॥ जहाँ न सूर्य का प्रकाश होता है, न चन्द्रमा का और न अग्नि का, जहाँ जाने के बाद जीव लौटकर नहीं आता, वह मेरा परमधाम है ॥ ४१ ॥ मैंने जिस अज्ञान अन्धकार दुःख स्वरूप मायामयि सृष्टि का वर्णन किया है, उसके ऊपरीसीमा में अपार विस्तार वाली एक विरजानामक नदीहै ॥४२॥

सा चाऽऽवरणभूताहि विश्वस्य पुरतो विधे। प्रधान परमव्योम्न्यान्तरे-विरजानदी ॥ ४३ ॥ वेदान्तस्वेदजनिततोयैः प्रस्नविता शुभा। तस्यास्तीरे परव्योम त्रिपाद्भूतंसनातनम् ॥ ४४ ॥ अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्त परमंपदम्। शुद्धसत्त्वमयं दिव्यमनन्तं ब्रह्मणःपदम् ॥ ४५ ॥ अनेककोटिसूर्याग्नि तुल्यवर्च-स्कमव्ययम्। सर्ववेदमय शुद्धं सर्वप्रलयवर्जितम् ॥ ४६ ॥ असंख्यमजरं नित्यं जाग्रतस्वप्न विवर्जितम्। हिरण्यमयं मोक्षपदं ब्रह्मानन्दसुखाह्वयम् ॥ ४७ ॥ समानाधिक्यरहितमाद्यन्तरहितं शुभम्। एवमादि गुणोपेतं तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ४८ ॥ व्युहलोकात्परतरो विभवाख्यस्तु यः स्मृतः। वासुदेवो महाभाग तस्य लोकं वदामि ते ॥ ४९ ॥ अयोध्याख्यापुरी चैका द्वितीयामथुरा स्मृतः। मत्स्यादीनां तथा पुर्यः परितः सम्प्रकीर्तिताः ॥ ५० ॥

अर्थ—हे ब्रह्मा ! वह विरजानामक नदी इस विश्वरूप प्रधान प्रकृति के और

त्रिपाद्विभूति के बीचमें आवरणरूपा है। अर्थात् विरजा और त्रिपाद्विभूति की विभाजक है ॥ ४३ ॥ यह नदी वेदान्तस्वेद अर्थात् भगवान के कल्याणमय जल से भरी है। अतः यह कल्याणमयि है। इसी नदी के उसपार में तीनपाद वीभूति सनातन ब्रह्मधाम है ॥ ४४ ॥ यह धाम अमृतमय, एकरस, नित्य, अनन्त शुद्धसच्चिदानन्दमय ब्रह्मका नित्यधाम परमपद है ॥ ४५ ॥ जो करोडोंसूर्यों के समान प्रकाशमान करोड़ों अग्नियों के समान तेजमान सर्ववेदमय सर्वप्रलयरहित परमशुद्ध है ॥ ४६ ॥ प्रकृति के जाग्रत स्वप्नादि आवरणों से रहित अनन्त दिव्यधामयुक्त स्वर्णमय ब्रह्मानन्द सुख नामक मोक्षधाम है ॥ ४७ ॥ जो आदि अन्त तथा समानता रहित कल्याणमय दिव्यसुख संयुक्त वह भगवान का परात्परधाम है ॥ ४८ ॥ जो वासुदेवादिक चतुर्व्यूहों से अत्यन्त परे है। जिसका बल, पराक्रम, ऐश्वर्य, महिमा, उच्चता की सीमा, योग की सीमा, काल की भी सीमा, मोक्षधाम कहा जाता है। हे महाभाग्यशालिन् ब्रह्मा! जिसको वासुदेव भी कहा जाता है। उस लोक को मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ४९ ॥ उस लोक में अयोध्या नामकी एक प्रधान नगरी है, और दूसरी को मथुरा नामसे स्मरण किया जाता है। इसप्रकार उसपुरी के चारों ओर मत्स्य आदिक भगवान के अनन्त अवतारों की पुरियाँ हैं ऐसा कहा जाता है ॥ ५० ॥

तत्रायोध्यापुरीरम्या यत्रनारायणोहरिः। रामरूपेणरमते सीतयापरयासह ॥ ५१ ॥ मणिकाञ्चनचित्राढ्या प्राकारैस्तोरणैर्वृता। चतुर्द्वारसमायुक्ता गुह्यगो-पुरसंयुता ॥ ५२ ॥ चण्डादिद्वारपालैस्तु कुमुदाद्यैः सुरक्षिता। नित्यमुक्तजनो-पेता नित्योत्सवमनोहरा ॥ ५३ ॥ चण्डप्रचण्डौ प्राग्द्वारे याम्ये भद्रसुभद्रकौ। वारुण्यांजयविजयौसौम्यौधातृविधातृकौ ॥ ५४ ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोऽथ वामनः। शङ्कुकर्णः सर्वभद्रा सुमुखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ५५ ॥ एतेदिक्पतयः प्रोक्ताः पुर्या अस्याश्चतुर्मुख। कोटिवैश्वानरप्रख्यैर्गृहपंक्तिभिरावृताम ॥ ५६ ॥ आरूढ यौवनैर्नित्यैर्दिव्यनारीनरैर्युतम्। अन्तःपुरं तु देवस्यमध्येपुर्यामनोहरम् ॥ ५७ ॥ मणिप्राकारसंयुक्तं वरतोरणशोभितम। विमानैर्गृहमुख्यैश्च प्रासादैर्बहुभिर्वृ-तम ॥ ५८ ॥

अर्थ—उन सब पुरियों के मध्य में श्री अयोध्या जी नामक पुरी है; वह अत्यन्तरमणीय है। वहाँ उस पुरी में नारायण के परात्परस्वरूप श्री राम जी अपनी

अभिलाषा आल्हादशक्ति श्री सीता जी के साथ रमण करते हैं ॥ ५१ ॥ यह नगरी स्वर्ण (सोने) और मणियों से चित्र विचित्र बनी हुई है । उसनगरी के परकोटादि तोरणादिक सजावटों से सजे हुये हैं । और उस नगरी में चारों दिशाओं में चार द्वार हैं । प्रत्येक द्वार ऊँचे गोपुरों से संयुक्त है ॥ ५२ ॥ उस नगरीके चारोंदिशाओं के फाटकों पर चण्डादिक द्वारपाल पहरा करते हैं । और कुमुदादिक दिग्पाल चारों दिशाओं से रक्षा करते हैं । उस नगर में नित्य एवं मुक्तजन (भगवत् पार्षद) नित्य ही मनोहर उत्सव करते रहते हैं ॥ ५३ ॥ उस नगर के पूर्व द्वार में चण्ड और प्रचण्ड तथा दक्षिण द्वार में भद्र और सुभद्र तथा पश्चिम द्वार में जय और विजय और उत्तर द्वार में धातृ और विधातृ पहरा करते हैं ॥ ५४ ॥ कुमुद कुमुदाक्ष पुण्ड-रीक और वामन शंकुकर्ण और सर्व सुमुख और सु प्रतिष्ठित ॥ ५५ ॥ ये आठों उस अयोध्यापुरी के आठों दिग्पाल हैं । हे ब्रह्मा ! उस अयोध्यापुरी के भीतर करोड़ों अग्नियों के समान दिव्य प्रकाशमान महलों के कई आवरण हैं ॥ ५६ ॥ उसनगरी में नित्यकिशोर अवस्था के नरनारी निवास करते हैं । उस नगरी के मध्य में श्री सीताराम जी का अन्तःपुर अत्यन्त मनोहर है ॥ ५७ ॥ जो दिव्यमणियों के परको-टाओं से और सुन्दर ध्वजा पताका तोरणादिकों (वन्दनवारों) से अतिशोभित है । उस अन्तःपुर में अनन्तदिव्य महल और विमान तथा सभाभवन (घर) हैं ॥ ५८ ॥

दिव्याप्सरोगणैः स्त्रीभिः सर्वतःसमलंकृतम् । मध्येतुमण्डपंदिव्य राजस्थान-महोत्सवम् ॥ ५९ ॥ माणिक्यस्तम्भसाहस्रजुष्टं रत्नमयंशुभम् । धर्मादिदैवतैर्नि-त्यैर्वृतं वेदमयात्मकैः ॥ ६० ॥ अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यैः पादविग्रहैः । ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यरूपैर्वृतं क्रमात् ॥६१॥ शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा । धर्मादिदेवतानांच शक्तयःपरिकीर्तिताः ॥ ६२ ॥ वसन्ति मध्यगास्तत्र वन्हिसूर्यसुधांशवः । कूर्मश्चनागराजश्च वैनतेयस्त्रयीश्वरः ॥ ६३ ॥ छन्दांसि-सर्वमन्त्राश्च पीठरूपत्वमास्थिताः सर्वाक्षरमयंदिव्यं योगपीठमितिस्मृतम् ॥ ६४ ॥ तन्मध्येऽष्टदलंपद्म मुदयार्कसमप्रभम् । तन्मध्येकर्णिकायांतु साविव्यांशुभदर्शनः ॥ ६५ ॥ ईश्वर्यामहदेवेशस्तत्राऽऽसीनः परः पुमान् । इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्य-प्रकाशकः ॥ ६६ ॥

अर्थ—यह अन्तःपुर दिव्यलीलाविलासिनी अलौकिक शील गुण स्वभाव सौन्दर्य

सम्पन्ना स्त्रियों से सर्वत्र (चारों ओर) सम्यक् प्रकार अलंकृत [शोभित] रहता है। और उस नगर के मध्यमें सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामजी की राजगद्दी [रत्नसिंहा-सन] दिव्यमण्डप महानउत्सवों से पूर्ण है ॥ ५६ ॥ उस राजमण्डप में रत्नों से जड़े हुये मणिमय हजारों स्तम्भ [खम्भा] सुशोभित हैं। और वेदमय आत्मावाले, धर्मादिक देवता उस सभा के सभासद हैं ॥ ६० ॥ जिस प्रकार उस सभा में धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य, वैराग्य देवता रूप में सभासद हैं। उसी प्रकार अधर्म. अज्ञान. अवैराग्य (आशक्ति या प्रवृत्ति) अनैश्वर्य भी विग्रहवान देवता रूपसे सभासद हैं। और ऋगवेद, यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद भी क्रमशः सभा में रूपवान होकर बैठते हैं ॥ ६१ ॥ और आधारशक्ति चितशक्ति कल्याणशक्ति आदिक शक्तियाँ भी धर्म आदिक देवताओं की शक्तियाँ कही गई हैं ॥ ६२ ॥ उस सभामण्डप के मध्य [बीच] में अग्नि सूर्य और चन्द्रमा यह त्रयमण्डल होकर कूर्म शेष और गरुड़रूप में ईश्वरों के भी परम ईश्वर श्री राम जी का सिंहासन हैं ॥ ६३ ॥ और उस सिंहासन में वेदके सभी मन्त्र छन्द अक्षरादि ही सिंहासन का रूप धारण किये हुये रहते हैं। इसलिये उस दिव्य सिंहासन को योगपीठ के नाम से स्मरण किया जाता है ॥ ६४ ॥ उस योगपीठ नामक सिंहासन के मध्य में उदयकालीन सूर्य के समान दिव्यप्रकाशमय अष्ट-दल का एक कमल है। उस कमल की मध्यकर्णिका के बीच में प्रकाशमान आसन में कल्याणमय शुभ दर्शन होता है ॥ ६५ ॥ आद्याशक्ति ईश्वरियों की भी परमईश्वरी श्री सीता जी के साथ समस्त देवों और ईश्वरोंके भी ईश्वर परात्पर पुरुष श्रीरामजी यहाँ पर विराजमान हैं। जो नीलकमलदल के समान श्यामवर्णवाले करोड़ों सूर्यों के प्रकाशक हैं ॥ ६६ ॥

युवाकुमारः स्निग्धाङ्गकोमलावयवैर्वृतः । फुल्लरक्ताम्बुजनिभकोमलाङ्घ्रि सरोजवान् ॥ ६७ ॥ प्रबुद्ध पुण्डरीकाक्षः सुभ्रूवल्लियुगाङ्कितः । सुनासा सुकपोलाढ्यः सुशोभमुखपङ्कजः ॥ ६८ ॥ मुक्ताफलाभदन्ताढ्याः सुस्मिताधर विद्रुमः । परिपूर्णेन्दुसंकाश सुस्मिताननपङ्कजः ॥ ६९ ॥ तरुणादित्यवर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजितः। सुस्निग्धनीलकुटिल कुन्तलैरूपशोभितः ॥ ७० ॥ मन्दार पारिजातादि कबरीकृतकेशवान् । प्रातरुद्यत्सहस्रांशुनिभ कौस्तुभशोभितः ॥ ७१ ॥हार-स्वर्णस्रगाशक्त कम्बुग्रीवाविराजितः । सिंहकन्धनिभैः प्रोच्चैः पीनैरांसैर्विराजितः॥७२

अर्थ—नित्यकिशोर अवस्था सम्पन्न सुन्दर सुकुमार कोमल अवयवों (अंगों) से युक्त खिले हुये लालकमल के समान कोमलचरणकमलवाले ॥ ६७ ॥ कमलदल लोचन युगल काम के धनुषाकार सुन्दर भृकुटि (भौंहं) वाले, सुन्दरनाशा एवं शोभायमान कपोल तथा मंजुल मुखकमल वाले ॥ ६८ ॥ मुक्ताओं (मोतियों) के समान प्रकाशमान दाँतों वाले, मन्दमुसुकान युक्त लालमणि अरुणाधर वाले, शर्दपूर्ण, चन्द्र के समान प्रसन्नमुख वाले, ॥ ६९ ॥ दोपहर के सूर्य के समान प्रकाशमान कानों. के कुण्डलोंवाले अत्यन्त कोमल घुँघराले केशोंवाले, श्री सीताराम जी दिव्यसिंहासन पर विराजमान सुशोभित हैं । ७० ॥ केशों में मन्दार पारिजात आदिक फूल गूँथे गये हैं । कण्ठ में कौस्तुभमणि प्रातःकालीन उदय होते हुये सूर्य के समान अरुणाई लेते हुये प्रकाशयुक्त शोभित होती है ॥ ७१ ॥ शंख के समान ग्रीवा में स्वर्णमणि रत्नजटित हार एवं फूलों की मालायें धारण किये हैं । सिंह के समान हृष्ट पुष्ट ऊँचे कन्धा विशेष शोभित हैं ॥ ७२ ॥

अनन्त श्री युगलानन्यशरण जी महाराज कृत श्रीधाम कान्ति की भूमिका स्वरूप श्रीलक्ष्मण किलाधीश पं० श्रीसीतारामशरणजी महाराज का लेख—

❋ अयोध्या के अतीत तथा बर्तमान स्वरूप ❋

अर्थ—वेद में अयोध्या को देवताओं की पुरी कहा गया है-' अष्टचक्रा नव-द्वारा देवानां पूरयोध्या" आठचक्र नवद्वारोंवाली अयोध्या देवताओंकी पुरी है। वेदावतार श्रीवाल्मीकीय रामायण में यहाँ के निवासियों में अतुल ऐश्वर्य का वर्णन मिलता है।

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान । विनविष्टः सरयूतीरे धनधान्यवान् ॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता । मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मितास्वयं ॥
आयता दश चद्वे च योजनानि महापुरी । श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तकहापथा ॥
(वाल्मी० १। ।५-७)

अत्यन्त समृद्ध कोशल देश में लोक प्रसिद्ध श्री अयोध्यापुरी विद्यमान है। यहाँ के निवासी अत्यन्त सन्तुष्ट एवं धन धान्य से परिपूर्ण थे । आदिराजा श्रीमनु ने अपने संकल्प से इस पुरी का विस्तार किया था । तीन योजन (बरहकोश) चौड़ी तथा बारह योजन (अड़तालिश कोश) लम्बा अयोध्या का मूल नगर था। उप नगरों के साथ इस पुरी का विस्तार अनेकों योजन था । 'महापुरी मूल नगरम् उपनगर साहित्येत्वनेकयोजनास्तीति भावः—भूषणटीका ।

तभी तो प्रयाग से ही अयोध्या के शिखरों और पताकाओं के दर्शन होते रहते थे ।

कोशल देश का नाम है, जिसमें अयोध्यापुरी विराजमान है । कोशल देश भी दो हैं—दक्षिण कोशल, दूसरा उत्तर कोशल, अयोध्या उत्तर कोशल देश में है । उत्तर कोशल में अयोध्या थी यह भागवत में सुस्पष्ट है—

"य उत्तराननयत् कोशलान्दिवम्" (भा० ५)

भागवतकार कहते हैं—देवता, मनुष्य एवं पशु आदि को भी श्रीरामजी का ही भजन करना चाहिये, क्यों कि श्री राम जी सुकृतज्ञ हैं थोड़ा भजन को बहुत मानते हैं । तभी तो उत्तर कोशलवासी (अयोध्यावासी) समस्त पशु तृण आदि को अपने साथ दिव्यधाम ले गये । महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि—

"तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः"
... ... यस्यां दशरथो राजा वसन् जगदपालयत् (१। ।१-४)

अर्थात उस अयोध्यापुरी में राजा दशरथ जगत् का पालन करते थे । वे वेदों के ज्ञाता थे, महर्षि के तुल्य थे राजर्षि के रूप में तीनों लोकों में प्रसिद्ध । उस अयोध्या में कोई भी मनुष्य कामी, कायर क्रूर नहीं थे । मूर्ख तथा नास्तिक एक भी मनुष्य नहीं था । सभी स्त्री पुरुष धर्म शील एवं महर्षियों के समान निर्मल थे । माला कुण्डल मुकुट के बिना कोई भी मनुष्य नहीं था । सभी अयोध्या निवासी विशिष्ट भोगों से पूर्ण थे । इस प्रकार अयोध्यावासियों के आदर्श जीवन का विशद वर्णन महर्षिने बालकाण्ड के पाँच से छठेसर्ग तक अतिविस्तार से किया है । वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड के प्रारम्भ में अयोध्यावासियों के उत्कृष्ट प्रेम का सम्यक् दर्शन होता है । चक्रवर्ती श्रीदशरथजी ने एक महती सभा बुलाई और सभी से पूछा कि श्रीरामभद्र को युवराज बनाने की मेरी इच्छा है, आप सब विचार कर अपनी स्वीकृति दें ।

श्रीदशरथजी की बात सुनते ही सभी सभासद प्रसन्न होकर हर्षनाद करने लगे । उस हर्षनाद से सभामंडप गूँज उठा सभी ने एक स्वर से कहा—राजन् ! आप अब अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं अतः श्रीरामजी को युवराज अवश्य बना दें । श्री दशरथ जी ने कहा—श्रीरामजी अत्यन्त सुकुमार हैं, वे इतना विशाल राज्यभार कैसे वहन कर सकेंगे ? इसका उत्तर देते हुए अयोध्यावासी कहते हैं । कि—

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम् । गजेन महता यान्तं छत्र वृताननम् ॥

(वाल्मी० २।२।२२) हे राजन् ! हम लोग राज्य की रक्षा के लिये श्री राघवेन्द्र को राजा नहीं बनाना चाहते हैं हम परम सुकुमार श्रीरामभद्र को राज्यभार वहन के लिए युवराज नहीं बनाना चाहते हैं हम तो सपरिवार उनके सौन्दर्य माधुर्य

का रसास्वादन करना चाहते हैं । हम सब यही चाहते हैं कि महाबाहु श्रीरघुवीर युवराज बनकर विशाल हाथी पर सवार होकर हमारे महलों की गलियों में यात्रा करें । हाथी पर जब वे सवार होंगे तब सिर पर लगे हुए छत्र से उनकी शोभा और बढ़ जायगी । साथ ही दृष्टि दोष बचाने के लिये भी छत्र से उनका मुख आच्छादित करना चाहते हैं छत्र लगी मुक्ता की झालरों के बीच कभी कभी जब रुक रुक कर दर्शन होगा तब और भी दर्शन की लालसा बढ़ेगी ॥

अयोध्यावासियों ने कहा राजन् ! आपके पुत्र श्रीरामभद्र में इतने कल्याण गुण हैं कि हम सब उनके गुणों में अत्यन्त आसक्त हो गये ।
"बहवो नृप कल्याणगुणाः पुत्रस्य सन्ति ते ।" इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न सभी महापुरुषोंसे श्रीरामभद्र विलक्षण हैं । इनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है ॥ "व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखित : उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥ अपने परिवार के नहीं किन्तु नीच से नीच, बाल युवा वृद्ध के दुख में श्रीरामभद्र अत्यन्त दुखी हो जाते हैं । "भृशं भवति दुःखितः" का तात्पर्य यह है कि आश्रितों के दुख से इतने अधिक दुखी हो जाते हैं कि आश्रितों के दुख का कारण अपनी असावधानी समझने लगते हैं । प्रभु सोचते हैं कि यदि मैंने ठीक से इनका पालन किया होता, तो यह क्यों दुखी होता । उत्सवों में सभी के गृहों में जाते हैं और पिता के समान सन्तुष्ट होते हैं ॥

" स्मित पूर्वाभिभाषी च ।" मन्दहास के साथ सर्व प्रथम दूसरों से स्वयंकुशल प्रश्न पूछते हैं जिससे उनसे बातें करनेमें किसी साधारण मनुष्य को संकोच नहीं हो । देवता, मनुष्य सभी श्रीरामजी के बल, वीर्य आयु की वृद्धि की कामना करते रहते हैं । "स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समाहिता । सर्वान् देवान्नमस्यन्ति रामस्यार्थे मनिस्वनः ॥ वृद्धा एवं तरुणी स्त्रियाँ सायं प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत होकर सावधान होकर श्रीरामजी के मंगल के लिए सभी देवताओं को नमस्कार करती हैं । सभी देवताओं को नमस्कार इसलिए करती हैं कि कोई देवता नाराज न हो जाय । एक दो देवता शायद कल्याण करने में असमर्थ हों अतः सब मिलकर अवश्य कल्याण करेंगे । वृद्धा तथा तरुण ये दोनों स्त्रियाँ एक प्रकार से परवश हैं वृद्धा तो दूसरों के सहारे स्नान आदि कर देव मंदिरों में प्रार्थना करती हैं । तरुणी स्त्रियाँ अपने सौंदर्य के भार से ही तीनों काल स्नान कर देवालयों में जाने में असमर्थ रहती हैं । किन्तु श्रीरामजी के लिए सभी सदा सावधान होकर देवताओं से प्रार्थना करती रहती हैं । यद्यपि देवतागण श्रीरामजी से रक्षित हैं, श्रीरामजी की रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, किन्तु प्रीति की रीति बड़ी विलक्षण होती है । प्रेमियों के समक्ष प्रभु का ऐश्वर्य सदा

तिरोहित [छिपा] रहता है, उनके समक्ष तो प्यारे के माधुर्य का सागर ही उमड़ता रहता है । अतः प्रीति की दृष्टि से यह प्रभु के लिए मंगलकामना अत्यन्त प्रसंशनीय है । श्रीमानस में भी अयोध्या वासियों ने चित्रकूट में श्रीराम जी के मंगल के लिए पंचदेवों की उपासना की है ।

करि मज्जन पूजहिं नर नारी । गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी ॥
रमारमन पद बंदि बहोरी । बिनवहिं अंजुलि अञ्चल जोरी ॥
राजा राम जानकी रानी । आनँद अवधि अवध रजधानी ॥ अयो० कां २७३

इस प्रकार पंचदेवों की उपासना अपने लिए यदि करते तो परत्व की दृष्टि से अनुचित था । किन्तु प्रभु के मंगल के लिए उपासना माधुर्य दृष्टि से प्रशंशनीय है । वाल्मीकीय रामायण तो माधुर्य प्रधान ग्रन्थ है । अतः श्री किशोरी जी श्रील-क्ष्मणजी सभी ने प्रभु के लिये मंगलकामना की है ॥ श्रीराघवेन्द्र के विरह में श्री अयोध्यापुरी के वृक्ष भी सूख गये ।

विषय ते महाराजा रामव्यसन कर्शित अपिवृक्षा परिम्लानाः सपुष्पांकुरकोरकाः
उपतप्तोदका नद्यः पल्ववानि सरांसि च परि शुष्क पलाशानि वनान्युपवनानि च

श्री सुमन्त जी श्रीदशरथजी से कह रहे हैं कि महाराज ! आपके राज्य में श्रीरामभद्र के वियोग में पुष्प एवं कलिका के साथ वृक्ष भी शुष्क हो रहे हैं। नदियों के जल उष्ण हो गये हैं । बन उपवन सभी श्रीरामजी के वियोग में सूख रहे हैं । लौकिक वृक्ष जल से हरे भरे रहते हैं तथा जलाभाव में सूख जाते हैं, किन्तु श्री अयोध्यापुरी के वृक्ष श्रीरामभद्रजू के संयोग से हरे-भरे रहते हैं तथा श्रीराम वियोग में सब सूख जाते हैं । यह श्रीअवधधाम की महिमा है । इसकी चर्चा समस्त रहस्य ग्रन्थ में पायी जाती है । पञ्चस्तवीकार ने भी लिखा है । "वृक्षाश्च तान्तिमलभन्त भवद्वियोगे" यद्यपि आपामर देवता पर्यन्त जीवों पर श्रीरामभद्र की कृपा समानरूप से रहती है, किन्तु अयोध्यावासियों पर विशेष अनुग्रह प्रसिद्ध है । उ० क० दो० ४ को पढ़िये कि—"अति प्रिय मोहि यहाँ के बासी । मम धामदा पुरी सुख रासी ॥ पञ्चस्तवीकार भी कहते हैं—"ये धर्ममाचरितुमभ्यसितुं च योगं, बोद्धुं च किञ्चन न जात्वधिकार भाजः । तेऽपि त्वदाचरितभूतलबन्ध गन्धाद्, बन्धातिगाः परगतिं गमिता-स्तृणाद्याः ॥" हे नाथ ! जो लोग धर्माचरण के योग्य नहीं थे, न तो योग एवं ज्ञान के अधिकारी ही थे वे पशु पक्षी तृण आदि भी आपकी लीलाभूमि के निवासी होने केकारण परमगति प्राप्तकर गये । इसी प्रकार श्रीवत्साङ्कमिश्र भी कुछप्रश्न करते हैं—

त्वमामनन्ति कवयः करुणामृताब्धे ज्ञान क्रियाभजनलभ्यमलभ्यमन्यैः ।

एतेषु केन वरदोत्तरकोशलस्थाः । पूर्वं सनूर्ध्वगजन्म हि जन्मकृत्याम् ॥

हे नाथ ! वेद शास्त्र के ज्ञाता मुनिजन सदा से उपदेश देते आ रहे हैं, कि भगवान की प्राप्ति कर्म, ज्ञान एवं भक्ति से ही होती है अन्य साधनों से नहीं । किन्तु अयोध्यावासी कीट, तृण आदि ने इनमें से कौन योग किये, जो उनको आप अपने साथ निजधाम ले गये ? स्पष्ट है कि अयोध्यावास के प्रताप से ही वे परमपद के अधिकारी हुये । तभी तो मानसकार कहते हैं । 'चारि खानि जग जीव अपारा ॥ अवध तजे तनु नहिं संसारा ॥ मा० कां० १४ दो० ॥ श्रीमद्भागवतकार श्री राम जी की उपासना की महत्ता बतलाते हुये श्री अवध की महिमा स्वीकार करते हैं ।

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः, सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् । भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं, य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥ (भा० ५।१९।८) श्रीहनुमानजी पंचम स्कन्ध में श्रीरामजी की उपासना की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि–देवता हो या असुर नर हो या वानर सभी को श्रीरामचन्द्र जी की उपासना करनी चाहिए । क्यों कि थोड़े से उपकार में श्रीरामजी प्रसन्न हो जाते हैं । तभी तो उत्तर कोशलवासी समस्त जीवों को वे अपने साथ निजधाम ले गये । मानस में श्रीपार्वती जी ने इस चरित को आश्चर्य के साथ पूछा है—'बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम । प्रजासहित रघुबंशमनि किमि गवने निज धाम ॥ ११० दो० ॥ अर्थात् श्री राम जी अयोध्यावासी अपनी प्रजाओं के साथ अपने निजधाम [साकेत] गये, यह अत्यन्त आश्चर्य चरित किया है । आज तक किसी अवतार के चरित में ऐसी आश्चर्य लीला देखने सुनने में नहीं आई है । भागवतकार कहते हैं—'स यैः स्पृष्टोऽभिपृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा । कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ (भा० ९।११।२२) जिन्होंने भगवान श्रीराघवेन्द्र सरकार का दर्शन किया स्पर्श किया अथवा उनके साथ थोड़ी दूर भी अनुगमन किया । (पीछे पीछे चले) वे सभी तथा कोशल देश के निवासी भी उस दिव्यधाम में गये, जहाँ बड़े बड़े योगीजन साधना के द्वारा जाते हैं । यह अयोध्यावास का ही महत्व है कि योगी दुर्लभ श्रीरामधाम साधारणजन को भी प्राप्त हो जाता है ॥ महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि—भगवान् श्रीराम के परमधाम यात्रा के समय स्थावर जंगम सभी जीव उनके साथ हो गए । ऐसा एक भी जीव नहीं बचा जो श्रीरामजी के साथ नहीं गया हो । तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः । जब भगवान् श्रीराम समस्त प्रजाओं के साथ अपने दिव्यधाम जाने लगे तब इस आश्चर्यमय दृश्य को देखने के लिए देवताओं के साथ ब्रह्मा जी वहाँ उपस्थित हो गये । आकाशमण्डल देवताओं के विमानों से खचाखच भर गया ।

सभी देवता पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। श्रीब्रह्माजी ने प्रभु से कहा—आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव, भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्वकां तनुम। यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्वकाम्॥ वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाकाशं सनातनम। (वाल्मी० ७।११०।८-९) व्यापक स्वरूप श्रीराम! अपने भ्राताओं के साथ अपनी इच्छानुसार अपने स्वरूप में प्रविष्ट हों, अथवा दिव्यधाम साकेत में चलकर आप विराजें। तात्पर्य यह कि प्रभु अपनी इच्छा से लीला का संवरण करें। "त्वं हि लोकगतिर्देव! न त्वां केचित्प्रजानते। ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम॥ हे देव! आप समस्त जीवों के एकमात्र आश्रय हैं आपको कोई नहीं जानता है। जिनका सदा आपका संग रहता है ऐसी अनपायिनी श्री जानकी जी केवल आपको जानती हैं। ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर श्रीरामभद्र अपने भ्राताओं के साथ अपने दिव्य श्रीविग्रह के साथ ही (छोड़कर नहीं) परधाम चले गए॥ 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः। [वा० ७।११०।१२] प्रभुने अपनी प्रजाओं के लिए भी ब्रह्मा जीसे अनुमोदन चाहा, ब्रह्माजी ने कहा नाथ! आपकी कृपा से ये सभी आपकी प्रजा सान्तानिक (साकेत) लोक जायेंगे-"लोकान् सन्तानकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः। [वा० ७।११०।१८] फिर क्या था सभी लोग गोप्रतारघाट श्रीसरयू में स्नान कर दिव्यरूप धारण कर विमान पर बैठकर प्रभु के साथ साकेत चले गये।

अयोध्या से ४ मील की दूरी पर गोप्रतारघाट है। आज कल लोग इसको गुप्तारघाट कहते हैं जहाँ श्रीरामजी गुप्त हुये थे, यह महान अनुचित है। गुप्तारघाट तथा इसका अर्थ दोनों भ्रमात्मक हैं। श्रीरामजी गुप्त नहीं हुयेथे, बल्कि ऊपरके लोक गए थे। अयोध्यावासी सभी प्रजा भी विमानपर बैठकर ऊपर सान्तानिक लोक गये हैं अतः घाट का शुद्धनाम गोप्रतार है। गोप्रतार का अर्थ है, जहाँ गायें पार होती हैं। थोड़ा जल होने के कारण वहाँ गायें पार जाकर घास चरती थीं, वाल्मीकि महर्षि लिखते हैं—

तथोक्तवति देवेश गोप्रतारमुपागताः। भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रु विक्लवाः॥ [वा० ७।११०।२८] अर्थात् ब्रह्माजी के वचन सुनकर सभी लोग आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र हर्षातिरेक से गोप्रतार पहुंच गए तथा जैसे-जैसे स्नान करते गए वैसे वैसे प्राकृत शरीर छोड़कर दिव्य शरीर से विमान पर बैठते गये।

मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत॥ पशु पक्षी कीट पतंग सभी सरयू जल के स्पर्श से दिव्य रूप धारण कर विमान पर बैठ गए। "ततः समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि। जगाम त्रिदशैः सार्धं सदा हृष्टैर्दिवं महत॥ [वाल्मी०७।११०।२८]

अर्थात् सभी को दिव्यरूप में आये हुये देखकर श्रीरामभद्र ने विमानपर सभी को अपने साथ में बिठलाकर नित्यधाम को चले गये ॥ यहाँ 'सदा हृष्टैः त्रिदशैः' यह विशेषण नित्य सूरियोंकी ओर संकेत करताहै ऐसा भूषण टीकाकार कहते हैं [दिवम्] से वैकुण्ठ [साकेत] समझना चाहिये—'दिवम् परमाकाशं वैकुण्ठम् त्रिदशै नित्य सूरिभिः, सदा हृष्टै रिति विशेषणात् ॥ इस प्रकार वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में विस्तारपूर्वक चराचर प्रजाओं के साथ श्रीराघवेन्द्र की साकेत यात्रा का वर्णन है। चराचर प्रजाओं को नित्य धाम प्रदान कर श्रीराघवेन्द्रने असाधारण उदारता प्रगट की है, साथ ही अयोध्यावास मात्र से दिव्यधाम की प्राप्ति की सरलता का भी प्रकाशन किया है॥ प्रभु की इस अकारण करुणा की प्रशंसा से समस्त शास्त्र एवं दिव्य प्रबन्ध भरे पड़े हैं। श्रीअयोध्यावास का महत्व है साकेत की प्राप्तिः—"राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित जग पावनि ॥ बा० कां० ३५॥ अयोध्यापुरी श्रीरामधाम को देनेवाली है, समस्त लोकों में विदित है तथा जगत् को पवित्र करनेवाली है। श्रीअयोध्या के दो स्वरूप हैं एक माधुर्य तथा दूसरा ऐश्वर्य। माधुर्य अयोध्या तो चर्मचक्षुओं से भी देखी जाती है किन्तु ऐश्वर्य रूप का दर्शन तो दिव्यदृष्टि से ही सम्भव है। अवधप्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी ॥ उ० कां० ६७॥ धनुष बाण धारण किये हुये जब श्रीरामजी हृदय में निवास करें तभी अयोध्या की महिमा जानी जा सकती है।

जब श्रीरामजी हृदय में बसेंगे तब काम क्रोध आदि विकार हृदय से भाग जाँयगे, फिर श्री अवध का महत्व ज्ञात होगा।

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा ॥

सु० कां० ४७॥ भगवत् कृपा से दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर इसी माधुर्यमयी अयोध्यापुरी में दिव्य अयोध्या का दर्शन होने लगता है। स्वामी श्री युगलानन्यशरण जी श्रीरसिकअलीजी प्रभृति सन्तों ने इसी अयोध्यापुरी को दिव्य रूप में देखा था। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने इसी अयोध्यापुरी को दिव्य रूप में साक्षात्कार किया था तभी तो—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम। प्रजा सहित रघुवंश-मणि किमि गवने निज धाम ॥ श्री पार्वती जी के इस प्रश्न का सुस्पष्ट उत्तर श्रीशंकर जी से नहीं दिलवाया। 'गये जहाँ शीतल अँवराई' से भले ही इस प्रश्न का गुप्त समाधान कर दिया गया हो, किन्तु जिस प्रकार अन्य प्रश्नों के स्पष्ट एवं विस्तृत उत्तर दिये गये वैसा उत्तर नहीं दिया गया ॥

श्रीअयोध्याजी को छोड़कर श्रीरामजी का अन्य निजधाम की कल्पना गोस्वामी जी की उपासना के अनुकूल नहीं हैं । वे कहते हैं :—"उमा अवध वासी नरनारि कृतार्थ रूप ।। ब्रह्म सच्चिदानन्दघन रघुनायक जहँ भूप ॥ उ० कां० ४७ ॥ अर्थात् साधारण राजा के राज्य में परिवर्तन होते हैं । किन्तु जहाँ सच्चिदानन्दघन श्रीरामजी राजा हों, तथा जहाँ के निवासी प्रजा कृतार्थ रूप हों, वहाँ परिवर्तन कैसे सम्भव हो सकता है ॥ श्रीरघुनाथजी ने निजमुख से श्रीअवध की महिमा गाई है,

सुनु कपीस अंगद लंकेशा । पावन पुरी रुचिर यह देशा ॥
यद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान विदित जग जाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ । यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥ उ०कां०४

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी सत्यवादियों में शिरोमणि हैं । वाल्मीकीय रामायण में कैकेयी अम्बा से स्वयं श्रीरामजी ने कहा:—अनृतं नोक्त पूर्वं में न च वक्ष्ये कदाचन" मैंने आज से पूर्व कभी भी असत्य भाषण नहीं किया है, आगे भी असत्य भाषण नहीं करूँगा । श्रीरामजी सत्यवक्ता तथा दृढ़व्रती हैं ऐसा वाल्मीकि जी लिखते हैं :—"सत्य वाक्यो दृढ़ व्रतः ।" श्रीभागवतकार भी कहते हैं कि—ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा । परीक्षित् जी ब्राह्मण एवं सत्यप्रतिज्ञ दाशरथि राम के समान थे । अतः श्रीरामजी श्रीअवध को वैकुण्ठ से श्रेष्ठ कह रहे हैं, इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है ।

मंत्र भाग में भी देवानां पूरयोध्या, से अयोध्या की महिमा प्रसिद्ध है । सनत्कुमार संहितान्तर्गत श्रीरामस्वराज में श्रीयुधिष्ठिरजी ने श्रीनारदजी से तीन प्रश्न किये हैं 'किं तत्वं किं परंजाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम् ।' पर तत्व क्या है, पर जाप्य क्या है, तथा मोक्षप्रद ध्यान क्याहै ? उत्तर में कहा गया है कि श्रीराम ही परतत्व हैं, श्रीराम मंत्र ही पर जाप्य हैं, तथा श्रीसीतारामजी का ध्यान ही मोक्षप्रद ध्यान है । ध्यान का वर्णन करते समय सर्व प्रथम अयोध्या का स्मरण किया गया है ।

अयोध्या नगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे । स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्न सिहासनं शुभम् ॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नाना रत्नैश्च वेष्टितं स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्य तेजसम् ।

(श्रीरामस्तवराज) सर्वप्रथम उपासक परम रमणीय अयोध्यापुरी का ध्यान करे, तत्पश्चात् रत्नमण्डप का ध्यान करे, तत्पश्चात् कल्पतरुका, तत्पश्चात् रत्नसिंहासनका, तत्पश्चात् अनेक रत्नों से सुसज्जित अष्टदल कमल का ध्यान करे, वहीं पर हजारों सूर्य के तेज के समान श्रीरामजी का ध्यान करे । यह ध्यान बालक रूप श्रीरामजी का हैं क्यों कि आगे पिता के अङ्क में विराजमान श्रीरामजी का ध्यान है ।

पितुरङ्कगतं राममिन्द्रनील मणि प्रभम् । इसी ग्रन्थ में दूसरा ध्यान श्रीविदेह-राजनन्दिनी जी के साथ करने को कहा गया है—श्रीवैदेही सहितं सुरद्रुमतले हैमे महा मण्डपे । इत्यादि । इस प्रकार बालक रूप का ध्यान हो अथवा युगलरूप का ध्यान हो, ध्यान करने से पूर्व श्रीअयोध्याका स्मरण परम आवश्यक है इसलिए भाष्यकार ने लिखा है । "आदौ रम्यं अयोध्या नगरं स्मरेत्" अर्थात् प्रथम रमणीक अयोध्या नगर का ध्यान करना चाहिए । ध्यानमंजरी में श्री अग्रस्वामी जी महाराज रसमालिका में श्रीकरुणासिन्धुजी महाराज, बृहत् ध्यानमंजरी में श्रीबालअलीजी महाराज, श्रीयुगल–विनोद विलाश में स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण महाराज प्रभृति आचार्यों ने इसी क्रम से विस्तारपूर्वक अपने ग्रन्थों में ध्यान का वर्णन किया है ।

इसप्रकार वेद से लेकर रामायण पर्यन्त श्रीअयोध्या की महिमा का वर्णन समानरूप में सर्वत्र मिलते हैं ।। श्रीगोस्वामीजी ने भी विश्ववन्द्य श्रीमानस की रचना इसी पुनीतपुरी में की थी ।। "नवमी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकाशा ।।बा० कां० ३४।। श्रीरामचरित मानसके प्रथम टीकाकार आचार्यप्रवर अनन्त श्रीकरुणा–सिंधुजी महाराज ने अयोध्यामें ही टीका की । तव से लेकर आजतक अयोध्याजी में श्री मानस के अध्ययन—अध्यापन गायन एवं कथा की अक्षुण्ण परम्परा चली आरही है । यवनों के शासनकाल में अयोध्या को उचित सम्मान नहीं मिला । इसलिए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने अयोध्या छोड़कर काशी निवास किया ।। विन्दु प्रवर्तक श्रीदीनवन्धु श्रीरामप्रसादाचार्जजी महाराज के समय से अयोध्या में सन्तों का समागम प्रचुर मात्रा में होने लगा । श्रीकरुणासिंधु श्रीरामचरणदासजी महाराज के काल में अयोध्या में सत्संग, कथा प्रवचन आदि वड़े समारोह के साथ होने लगे ।

१८५७ के युद्ध के पश्चात् स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण जी महाराज का प्रभाव अंग्रेज अधिकारियों पर विशेषरूप से पड़ा । वावन वीघे की परिधि के साथ लक्ष्मण-किला का निर्माण हुआ । स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज जैसे असाधारण भज-नानन्दी सिद्ध थे । वैसे ही हिन्दी संस्कृत उर्दू फारसी आदि भाषाओं के अप्रतिम विद्वान् भी थे । यही कारण था कि अंग्रेज मुसमलान आदि भी श्री स्वामी जी के भक्त थे ।

स्वामीजी के काल में श्रीअयोध्या में चार सिद्ध थे । स्वामी श्रीयुगलानन्य शरणजी महाराज, श्रीलक्ष्मणकिला, वावा श्री रघुनाथदास जी महाराज, वड़ीछावनी वावा श्री माधवदासजी उदासीन रानूपाली, पण्डितराज श्रीउमापति त्रिपाठीजीनयाघाट

स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण जी महाराज के पट्ट शिष्य पतिराज स्वामी श्री जानकीवरशरण जी महाराज असाधारण सन्त हुए इनके काल में श्री अयोध्या का वैभव लोकोत्तर बढ़ा। उनके दर्शनार्थ स्वामी श्री विवेकानन्द जी पधारे। स्वामी जी के दर्शन से स्वामी श्री विवेकानन्द जी अत्यन्त प्रभावित हुये। उन्होंने लिखा है कि मैंने आज वास्तविक सन्त का दर्शन किया।

श्रीधाम कान्ति पद नं० ६

नाम रूप गुन गन सेवन मधि यतन सुमति अवधारी।
काहू मध्य एक रस दुर्लभ दृढ़ अनन्य मन भारी॥
सबसे सुलभ सहज मंगलमय धाम रहस्य विचारी।
श्रीयुगलानन्यशरन सेवन श्रीअवध स्वच्छ श्रमहारी॥ ६॥

अर्थ—श्रीसीतारामजी के नाम, रूप, गुण, लीला सभी नित्य हैं किन्तु इनकी उपासना के लिये यत्न एवं सुन्दर बुद्धि की आवश्यकता है। नाम का यत्न स्पष्ट ही है। नाम निरूपन नाम जतन ते। सोइ प्रगटत जिमि मोल रतन ते॥ नाम के अर्थों पर विचार करते हुये सावधान होकर नाम जप करने से नामकी उपासना होती है लीला में बिना बुद्धि के प्रवेश होता ही नहीं। स्थिर चित्त के बिना रूप का दर्शन भी दुर्लभ ही है। अतः अखण्ड एकरस अनन्यता के साथ इन सबों की उपासना दुर्लभ है। विचार करने पर सबसे सुलभ मंगलमय श्रीधाम का रहस्य प्रतीत होता है। अतः श्री महराज कहते हैं कि सदा सेवन के योग्य, श्रमहारक निर्मल श्रीधाम ही है। सोते-जागते, बैठते-उठते; पवित्र-अपवित्र रोग-शोक आदि सभी अवस्थाओं में श्रीधाम का सम्पर्क बना रहता है। श्रीधाम की सुखद गोद में जीव सदा बिना यत्न हो सुरक्षित रहता है॥ ६॥

अनुभव अमल अजूब अभय अनवद्य अखंड अनूपा।
अमर अजर कारन अनन्य श्रीअवध सरस रसरूपा॥
बिरहव्यथा व्याकुल वनचर खज व्याध बिरोधविरूपा।
युगलानन्यशरन विकार बहु हरन वकार निरूपा॥ ७॥

अर्थ—अब अवध का शब्दार्थ कहते हैं—निर्मल, निरूपम अभयप्रद, अखण्ड अनुभव देने वाले तथा अपने आश्रितों को अजर अमर करने वाले श्रीअवध हैं। यह अर्थ अकार से लभ्य (प्राप्त) है। श्रीमहाराजजी कहते हैं कि-विरहका दुख व्याकुलता

आदि समस्त विरोधी विकारों का हरण करने वाला धकार ही है ॥ ७ ॥

धर्म ध्यान धारना ध्येय धुर धाम धीरता धामी ।
धवल धुरीन पीन मन प्रीतम धनद धकार सदामी ॥
वरन तीन तर जीह जपत जन जागत रैन ललामी ।
युगलानन्यशरन सर्वस सुख धाम बसे आरामी ॥ ८ ॥

अर्थ—धर्म ध्यान धारणा ध्येय एवं धाम में धैर्य देने वाला धकार है । साथ ही प्रियतम रूपी निर्मल धन प्रद है । अवध ये तीन अक्षर जप करते ही मनुष्य निरन्तर सुखी रहता है । श्री महाराज जी कहते हैं कि परम सुखप्रद श्रीधाम वास करने से सभी सुख प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

कीट पतंग तुरंग कुरंग विहंग सुरंग सँवारे ।
श्रीसाकेत सुरज पावन परसत श्रीधाम पधारें ॥
नींच ऊँच सम विसम भेद श्रीअवध न कबहुँ निहारें ।
युगलानन्यशरन संतत निज बाहु बलन सब तारें ॥ ९ ॥

अर्थ—कीट, पतंग, अश्व, मृग आदि श्री अवधधाम के पवित्र रज के स्पर्श करते ही श्रीअवध धाम के अधिकारी हो जाते हैं । नीच—ऊँच, सम विषम का भेद श्रीअवधधाम ने कभी भी नहीं विचार किया । श्रीमहाराज जी कहते हैं कि सबको अपने बाहुबल से सदा ही भवसागर पार उतारते हैं ॥ ९ ॥

धाम अधार रहत धामी निज नामी नैन निहारे ।
धाम समेत परत्व परम मुद मोद उमंग अपारे ॥
केवल इष्ट दरश कीन्हें पर तदपि न रहस बहारे ।
युगलानन्यशरण धामी सुख इतहीं सरस सँचारे ॥ ६५ ॥

धाम के आधार पर ही धामी रहता है जैसे नाम के आधार पर नामी । धाम के साथ ही धामी (श्रीरामजी) का परम तत्व एवं अपार रहस्य रहता है । यदि धाम के अतिरिक्त इष्टदेव का दर्शन हो भी जाय तो पर भी धाम के बिना रहस्य का आनन्द नहीं मिल सकता । श्रीमहाराज जी कहते हैं कि धामी श्रीरघुनन्दन का सरस विहार यहीं है ॥ ६५ ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण एवं श्रीमद्भागवत तथा श्रीरामचरित मानस के द्वारा श्री अवधधाम का स्वरूप समझा गया। अब प्रिय पाठकगण वेदों में श्री अवधधाम का स्वरूप देखें॥ अथर्ववेद—१०।२।२८ से ३३ तक। यथा—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां परम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजांददुः॥ २६॥ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥ ३०॥ अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽवृताः॥३१॥ तस्मिन्यन्हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्। पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापरा॥ जिताम्॥ ३३।

अर्थ—ब्रह्मणः पुरम्=ब्रह्म की अर्थात् परात्पर परमेश्वर परमात्मा जगदादि कारण अचिन्त्य वैभव श्री सीतानाथ भगवान् श्री राम जी की पुरी को—वेद= जानता है, उसे वह भगवान् तथा भगवान् के पार्षद सब ही लोग चक्षु (दिव्यआँख) प्राण और प्रजा देते हैं। अब प्रश्न यह है कि किस पुरी को जानने के लिये कहते हो। उसका समाधान करते हैं कि—यस्याः पुरुषः उच्यते=जिस पुरी का स्वामी पुरुष कहा जाता है। अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम स्मरण किया जाता है। उस पुरुष की पुरी को जानने के लिये श्रुति कह रही है। यः ब्राह्मणः=जो कोई अनन्त-शक्ति सम्पन्न सर्वव्यापक सर्वनियन्ता सर्वशेषी और सर्वाधार श्री राम जी की—अमृततेन आवृताम=अमृतिमयि अर्थात् मोक्षानन्द से परिपूर्ण-ताम पुरम् वेद=उस श्री अयोध्यापुरी को जानता है-तस्मै, ब्रह्म, च ब्राह्मा-उसके लिये साक्षात् भगवान् और ब्रह्म सम्बन्धी अर्थात भगवान् के श्री हनुमान जी सुग्रीव, अंगद, मयन्द, सुषेण, द्विविद दरीमुख कुमुद नील, नल, गवाक्ष, पनस गन्धमादन, विभीषण, जाम्बवान् और दधिमुख इत्यादि प्रधान षोड़श पार्षद अथवा नित्य और मुक्त सब जीव मिल कर-चक्षुः प्राणं प्रजाम्=उत्तम दर्शनशक्ति उत्तम प्राणशक्ति अर्थात् आयुष्य और बल तथा सन्तान आदि—ददुः=देते हैं। "ददुः" इस भूतकालिक क्रिया को देखकर घबड़ाना नहीं चाहिये। वेदकी सभी बातें अलौकिक ही होती हैं॥ २६॥ यस्याः पुरुषः-जिस पुरी का (स्वामी) परम पुरुष-उच्यते-कहा जा रहा है। अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद शास्त्रों में किया जाता है। और यहाँ भी २८ वें मन्त्र के पूर्व के

मन्त्रों से जिस पुरुष का निरूपण किया गया है, उसे—ब्रह्मणः तां पुरम्- भगवान् श्री राम जी की अयोध्यापुरी को—यः वेदतम्—जो कोई जानता है, उस प्राणी को—चक्षुः—अलौकिक दर्शनशक्ति अर्थात् वाह्य और आभ्यान्तरिक नेत्र तथा—प्राणः जरसः शारीरिक और आत्मिकबल मृत्यु से-पुरा न जहाति-पूर्व निश्चय ही नहीं छोड़ते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् श्री राम जी की इस मृत्युलोकस्थ श्री अयोध्यापुरी का दर्शन करनेवाला इस लोक में सब प्रकार सुखी एवं पवित्र जीवन व्यतीत करता है। शरीरान्त होने पर धाम के प्रभाव से श्री सीताराम जी को प्राप्त होता है। त्रिपाद्-विभूतिस्थ श्री अयोध्या जी को जानना कहा गया है, और इस लीलाअवध का दर्शन बताया गया है। क्यों कि त्रिपाद्विभूतिस्थ अवध का वेद शास्त्रों द्वारा जानना ही सर्वसाधारण के लिये सम्भव है, देखना नहीं। और इस लीला अवध को पुण्यात्मा तथा पापात्मा पण्डित मूर्ख द्विजोत्तम या न्युनवर्ग के सभी व्यक्ति सामान्यतया दर्शन करने में सक्षम हैं। क्यों कि लीला अवध स्थूलरूप में प्रगट है। अस्तु चर्म चक्षुओं का विषय सभी को समान है। और त्रिपाद्विभूतिस्थ श्री अवध तो श्री सद्गुरुकृपा से प्राप्त उपासना द्वारा ही दृष्टव्य है। चर्मचक्षुओं से नहीं। यद्यपि लीला अवध का भी वास्तविक स्वरूप तो श्री सद्गुरु कृपा के बिना दर्शन नहीं हो पाता, तथापि वाह्यरूप का दर्शन सभी करते हैं। इस स्थूल स्वरूप के दर्शन का भी फल निश्चित रूप से श्री सीताराम जी की प्राप्ति है। भेद केवल इतना ही है कि वास्तविक स्वरूप के दर्शन हो जाने पर जीव सर्वथा निर्विकार निर्वासित होकर श्री सीताराम जी का अनन्य अनुरागी बन जाता है। किन्तु वाह्यरूप के दर्शन से विकार और बासनायें तुरंतनष्ट न होकर कालान्तरमें नष्टहो जातीहैं। यद्यपि त्रिपाद्विभूतिस्थ श्रीअवध और इस लीला अवध का माहात्म्य समान है। दोनों में भेद केवल इतना ही है कि यह अवध माधुर्य प्रधान और त्रिपाद्विभूतिस्थ अवध भोगैश्वर प्रधान है। पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि, प्रगट परावर नाथ। रघुकुल मणि ममस्वामि सोइ कहिशिव नायो माथ ॥ ३० ॥

भगवान् श्री राम जी की श्री अयोध्यापुरी के चारों ओर कनकप्राकार (सोने का कोट है) यह अष्टमचक्र है। इसी को अष्टमावरण कहते हैं। इस चक्र के पश्चात् सप्तमचक्र (सप्तमावरण) है। इसी में अनेक रत्नों से जटित घाटवाली श्री सरयू जी नित्य विहार करती हैं। इसके बाद षष्टचक्र (छटाआवरण) है। इसी आवरण में भगवान् श्री राम जी का परमप्रिय श्री प्रमोदवन है। प्रमोदवन की चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं। पूर्व दिशामें शृंगार पर्वत दक्षिण दिशामें मणिपर्वत

पश्चिम दिशामें लीलाचल पर्वत और उत्तर दिशामें मुक्ताचल पर्वत है। इसी प्रमोद-बनमें शृंगारबन बिहारबन, तमालबन रसालबन, चम्पकबन चन्दनवन, पारिजातबन, अशोकबन, विचित्रबन, कदम्बबन, कामबन और नागेश्वरबन ये द्वादशबन हैं। और इसी बन में प्रतिक्षण सर्वऋतु सर्वरागिनियाँ निवास करती हैं। इसकेबाद पञ्चमचक्र अर्थात् पंचमावरण है। इसी आवरण में श्री मिथिलापुरी, चित्रकूट, बृन्दाबन, महा-वैकुण्ठ वा मूलवैकुण्ठ इत्यादि विराजमान हैं। इसके पश्चात् चतुर्थचक्र (चौथाआव-रण है। इसी में महाविष्णुलोक, रमावैकुण्ठ, अष्टभुज भूमा पुरुषलोक, महाब्रह्मलोक और महाशम्भुलोक हैं। इसी के भीतर भगवान् भिन्न भिन्न अवतार लेकर लीलायें करते हैं। अतः सर्व लीलालोक इसी आवरण में विराजमान हैं। इसके पश्चात् तृतीयचक्र (तीसरा आवरण) है इसी आवरण में भगवान् का मानसिक ध्यान करने वाले योगी और ज्ञानीजन निवास करते हैं। इसके पश्चात् द्वितीयचक्र (दूसरा आवरण) है। इसमें वेद, उपवेद शास्त्र, पुराण, उपपुराण, ज्योतिष, रहस्य, तन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग वैराग्य, यम, नियम, इनके साधन, काल, कर्म, गुण इत्यादि सब देहधारी होकर निवास करते हैं। इसके पश्चात् प्रथमचक्र (प्रथमा-वरण) है। इस आवरण में महाशिव महाब्रह्मा, महेन्द्र महावरुण, कुबेर, धर्मराज, दिग्पाल, महासूर्य, महाचन्द्र, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक किन्नर, विद्याधर, सिद्ध, चारण और अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशिता, वशिता, अवस्यति अर्थात् यथेष्ट सुखवाप्ति (मनमाना सुख देने वाली) ये आठ सिद्धियाँ अथवा अनूर्मित्व, दूरश्रवण, दूरदर्शन, मनोजव, कामरूप परकाय प्रवेश, स्वच्छंद, मृत्यु, देवसहक्रीड़ा, सङ्कल्पसिद्धि और आज्ञाऽप्रतिघात ये दश सिद्धियाँ अथवा त्रिकालज्ञता, परचित्ताभिज्ञता; अग्न्य-र्कोम्बुविषप्रतिष्टभ और पराजय करना ये पाँच सिद्धियाँ तथा पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द नील और खर्ब (या वर्ष) ये नव निद्धियाँ निवास करती हैं।

साम्प्रदायिक ग्रन्थों में श्री अयोध्या जी के सप्त आवरणों का ही उल्लेक है। उसमें और इनमें कुछ विरोध नहीं है। काञ्चन प्राकार (सोने का कोट) जो श्री अयोध्य जी के चारों ओर अव्यवहित रूप से विद्यमान है। उसे ले लेने से आठ आवरण होते हैं। उसको छोड़ देने से सात ही रहते हैं। छोड़ने में हेतु यह है कि उस आवरण में श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त और कोई लोक नहीं है। अन्यआव-रणों में अन्यलोक आदि बसे हैं। उस काञ्चन प्राकार को ग्रहण करने में हेतु यह है कि वह भी स्वरूपतः एक आवरण है। इसलिये कुछ भी बिरोध नहीं है। कहीं कहीं

भूमि, जल, अगिनि, वायु, आकाश त्रिप्रकारक अहंकार और महत्तत्व इनको ही सप्तावरण मानलिया है। यह श्री अयोध्या जी का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इतने से प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ सुगमता से अवगत हो जावेगा। ब्रह्म की उसपुरी का नाम और स्वरूप अवगत हो जावेगा॥ ३१ ॥

पूः अयोध्या=वह पुरी श्री अयोध्या जी है। तब यह जिज्ञासा हुई कि वह पुरी कैसी है। तब कहा गया कि—अष्टचक्र=आठचक्रों अर्थात आठ आवरणोंवाली है। और नवद्वारा=जिसमें प्रधान नवद्वार (नौ दरवाजे) हैं। तथा जो देवानाम्= दिव्यगुण विशिष्ट, भक्ति; प्रपत्ति, सम्पन्न, यमनियमादिमान परमभागवत चेतनों से "सेव्याइतिशेष."=सेवनीय है। तस्याम् स्वर्गः=उस श्री अयोध्यापुरी में बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर—ज्योतिषाअवृतः=प्रकाशपुंज से आच्छादित—हिरण्ययः कोशः= सोने का मण्डप है॥—ऐसा ही वर्णन भार्गवपुराण में आया है। यथा—त्रिपाद-विभूतिवैकुण्ठे विरजायाः परेतटे। या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेनावृता पुरी॥ अर्थ— त्रिपाद्विभूतिस्थ वैकुण्ठ में विरजानदी के उस किनारे पर दिव्यगुण विशिष्ठ भगवत्पार्षदों से सेवित अमृतमयि सरयू जी की धारा से घिरी हुई श्री अयोध्या पुरी है। श्री तुलसीकृत रामायण की टीका में अनन्त श्री रामचरणदास जी ने सामवेद की एक तैत्तिरीय श्रुति लिखी है, वह भी इस अथर्व वेद के मन्त्र के समान ही है। यथा—देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्यमयः कोशः स्वर्गलोको ज्योतिषावृतो यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः कीर्तिं प्रजां ददुः॥ अर्थ— दिव्यगुण विशिष्ट भगवत्पार्षदों से भरीहुई श्रीअयोध्यापुरी के मध्यमें स्वर्ण (सोनेका) मण्डप है। वह परात्पर दिव्य साकेतलोक प्रकाशपुंज ब्रह्म ज्योति से घिरा हुआ है। अमृतमयि सरयू जी की धारा से घिरी हुई उस पुरी और उसके परमात्मा को जो निश्चय रूप से जानता है। उसे महान आयु कीर्ति सुपुत्र प्राप्त होता है, और शरीरान्त होने पर भगवत्स्वरूप होकर उसे दिव्यधाम को प्राप्त होता है॥ तस्मिन् हिरण्ययेकोशे=उस विशाल स्वर्ण [सोने के] मण्डप में--तस्मिन्आत्मन्वत्=उस मण्डप की आत्मा के समान—यद् यक्षम्=जो पूजनीयदेव विराजमान है। तत् ब्रह्मविदः= उसी को ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान जन विदुः=जानते हैं। अथवा "ब्रह्मविदुः" में दो पद है 'ब्रह्म' और 'विदुः' तब अर्थ यह हुआ कि—विद तत्=विद्वान जन, उसी यक्ष को उसी परमोपास्यदेव को—ब्रह्म विदुः=परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिसकोश में वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है। त्र्यरे=उसमें तीन अरे लगे हुये हैं अर्थात् वह मण्डप तीन अरों से बना हुआ है। यथा—त्रिप्रतिष्ठिते=तीनों लोकों में

वह प्रतिष्ठित है। इस मन्त्र में जो 'तस्मिन' पद आया है; वह षष्टीके अर्थ में है। इसीलिये मैंने उसका अर्थ 'उस के' किया है ॥ ३२ ॥ इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि श्री अयोध्या जी के मध्य में जो स्वर्णमय मण्डप है; उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हीं को विद्वान लोग ब्रह्म कहते हैं। श्री अयोध्या जी के स्वर्णमणि मण्डप में भगवान् श्री राम जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी देव विराजमान नहीं है। अतः भगवान् श्री राम जी ही परब्रह्म हैं। इसी अर्थ को विशद करने के लिये मैं यहाँ एक और श्रुति उद्धृत करता हूँ। इसेभी पूज्य स्वामी श्री रामचरणदास जी ने अपनी रामायण की टीका में उद्धृत की है, वह यह है कि—

"याऽयोध्या पुरी सा सर्व वैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्-ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहार स्थलमस्ति ॥

इसका भावार्थ यह है कि 'जो श्री अयोध्यापुरी है' वह सब वैकुंठों का मूल आधार है। साम्प्रदायिकों ने अनन्त वैकुंठों का वर्णन किया है। उसमें से पाँच को प्रधान माना है। वे पाँच ये हैं—वैकुण्ठं पंच विख्यातं क्षीराब्धं च रमारव्ययम्। कारणं महावैकुण्ठं पंचमं विरजापरम् ॥ अर्थात् क्षीरसागर वैकुंठ, रमावैकुंठ, कारण-वैकुंठ, महावैकुंठ और विरजापार अर्थात् आदिवैकुंठ। इन पाँचों वैकुंठों का मूलाधार है। यदि आदि वैकुंठ भी साकेतलोक का ही नाम हो तो वह आदिवैकुंठ अर्थात् श्रीअयोध्या जी शेष चार प्रधान वैकुंठों तथा अन्य अनन्त वैकुंठों का आधारीभूता हैं। वह मूल प्रकृति से अखण्ड और अपिरिर्वतनीय ब्रह्ममय है, विरजा के दूसरे पार में स्थित है। दिव्यरत्न जटित मण्डप वाली है। उसी श्री अयोध्या जी में श्री सीताराम जी की नित्यविहारभूमि है ॥

ब्रह्म=सर्वान्तर्यामी भगवान् श्री राम जी- पुरम्=उसी श्री अयोध्यापुरी में— अविवेश=प्रविष्ट हैं, अर्थात् विराजमान हैं। वह पुरी कैसी है—प्रभ्राजमानाम्=अत्यन्त प्रकाशमयी है। पुनः वह पुरी कैसी है—हरिणीम=मनको हरण करने वाली अथवा सर्वपापों का आत्यंतिक (अतिशय) नाश करने वाली है। पुनः वह पुरी कैसी है? यशसा सम्परीवृताम्=अनन्त कीर्ति से युक्त है। पुनः वह पुरी कैसी है। अपराजिताम्=सर्वपुरियों में श्रेष्ठ है। अर्थात् जिसकी तुलना कोई पुरी नहीं कर सकती है। अथर्व वेद का प्रथम अनुवाक यहाँ ही पूर्ण हो जाता है। इस अनुवाक् के अन्त में इन साढ़े पाँच मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्टरूप से जैसा श्री अयोध्या जी का

वर्णन किया गया है । कि इन मन्त्रों के शब्दों में व्याख्याताओं को अपनी ओर से कुछ मिलाने की आवश्यकता नहीं है । श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरी का इतना स्पष्ट और सुन्दर साम्प्रदायिक वर्णन मन्त्र संहिताओं में नहीं है ॥ ३३ ॥ अब इन मन्त्रों का सूक्ष्मतया संक्षिप्त भावार्थ समझ लिया जाये । वह यह है कि—

अर्थ—त्रिपाद विभूति में परब्रह्म परमात्मा श्री राम जी का धाम साकेत या श्री अयोध्या जी है । जिसके स्वामी श्री राम जी हैं । जो प्रेमी अनन्य भक्त या ज्ञानी उस ब्रह्मपुर श्रीरामधाम तथा श्रीराम ब्रह्म को जान लेता है, वह श्रीराम भक्ति द्वारा श्रीराम कृपा से संयुक्त होकर स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं से पार होकर, तुरीयावस्था—मुक्ति में पहुँचकर, सच्चिदानन्द-आनन्द-स्वरूप सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सायुज्य मुक्तिका अधिकारी बन जाता है । वह दिव्य अप्राकृत-ब्रह्म शरीर में प्रविष्ट हो जाता है । तब वह श्रीराम कृपा से ही अमृत से आवृत मृत्यु रहित, कालातीत ब्रह्मपुर श्रीराम की पुरी श्री अयोध्या जी को प्राप्त होता है । तब ब्रह्म श्रीरामजी उसको अपने सदृश परम दिव्य ज्ञान, दिव्य चक्षु प्राण, ओज-कान्ति बल सब कुछ देते हैं । उस मुक्तात्मा भक्त को श्रीरामजी का दिया हुआ प्राण, चक्षु आदि कभी भी नहीं त्यागता, अर्थात् वह अमर हो जाता है । सदा के लिये वहाँ निवास करने लग जाता है । श्रीरामजी का वह धाम (साकेत) श्री अयोध्या जी जिसमें आठ आवरण तथा नौ द्वार हैं । इन द्वारों पर श्रीरामजी के दिव्य पार्षद द्वार पाल हैं । ऐसी दिव्यपुरी श्री अयोध्या जी श्रीरामजी के भक्तों का निवास स्थान है । इसमें सब दिव्य रत्न कोश प्रकाशमय स्वर्ग; परमानन्दमय धाम है । इस श्री अयोध्या जी के मध्य भाग में राजभवन है । यहाँ तीन आवरणों से परिवेष्टित हिरण्मय कोश में कमल के आकार वाले दिव्य सिंहासन पर परमात्मा श्रीरामजी विराजमान हैं । इन्हीं को ज्ञानी जन 'परब्रह्म कहते हैं । ये ही सबको प्रकाशित करनेवाले परम शुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी हैं । ये स्वयं ही प्रकाशमान, सबके क्लेशहर, सर्वेश्वर हैं । परम यश से परिपूर्ण हिरण्यमयी इनकी दिव्यपुरी अपराजिता अजेया योद्धुमशक्या श्रीअयोध्याजी है । इसी में परात्पर पुरुष श्रीराम जी विराजमान हैं इनकी अपार महिमा का वर्णन कौन जान सकता है ।

उपर्युक्त वेद मन्त्रों का अर्थ रामायणी श्री रामकुमार दासजी महाराज मणिपर्वत वालों द्वारा वेदों में श्रीरामकथा नामक पुस्तक से लिया है ॥

अथ रुद्रयामले हरगौरी सम्वादे अयोध्याखण्डे पुरीवर्णनीनां त्रिशोऽध्याय:
याऽयोध्या जगतीतले तु मनुना वैकुण्ठतो ह्यानिता । यांच वा निजसृष्टि पालन परं वैकुण्टनाथं प्रभुम ।। या वै भूमितले निधाय विमला चेक्ष्वाकवे चार्पिता । सा योध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४३ ।। या चक्रोपरि राजते च सततं वैकुण्ठनाथस्य वै । या वै मानवलोक मेत्य सकलान्दात्री सदा वाञ्छितान् ।। या तीर्थानि पुनाति सन्ततमहो वर्वर्ति तीर्थोपरि । साऽयोध्या परमात्मनोविजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४४ ।। यस्यां वैष्णव सज्जना: सुरसिका: स्वाचारनिष्ठाः सदा । लीलाधाम सुनाम रूपदर्यिता: श्रीरामचन्द्रे रता: ।। यस्यां श्रीरघुवंशज: परिकरै: सार्द्धं सदा राजते । साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४४ ।। यस्यां तीर्थ शतं सदा निवसति ह्यानन्ददं पावनम् । यस्या दर्शन लालसा मुनिवरा ध्यानेरता: सर्वदा ।। यस्या भूमि रजस्त्वजादि विबुधा: वाञ्छन्ति स्वाभीष्टदम् । साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।। ४५ ।। यस्यां भाति प्रमोद काननवरं रामस्य लीलास्थलम । यत्र श्री सरिताम्वरा च सरयू रत्नाचल: शोभते ।। ध्येया ब्रह्म महेश विष्णु मुनिभि र्ह्यानन्ददा सर्वदा । साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परामुक्तिदा ।।४६।।

अर्थ—जिस श्री अयोध्या जी को श्री मनु जी कठिनतपस्या द्वारा विश्वपालन कर्ता सर्वसमर्थ वैकुण्ठनाथ भगवान् विष्णु से प्रार्थना करके, माया से परे तुरीयातीत स्थान से मगवाये । जिस निर्मल दिव्य श्री अयोध्या जी को प्रजावर्ग को पालनार्थ भूमण्डल (पृथ्वीलोक) में स्थापित करके, सर्व प्रथम महाराजाधिराज श्रीइक्ष्वाकुजी को गद्दीपर विठाया गया । परात्पर भगवान् श्रीराम जी की नगरी श्री अयोध्या जी सभी वैकुण्ठों की मूल आधार स्वरूप मोक्षदायिनी हैं । उन श्री अयोध्याजी की सर्वदा विजय हो ।। १ ।। जो भगवान् के वैष्णवतेज अनन्त सूर्य समान प्रकाशपुंज चक्र पर सर्वदा विराजती हैं । वही इस मानवलोक में आकर सबके मनोरथों को पूर्ण करने वाली, सर्वतीर्थ शिरोमणि एवं सभी तीर्थोंको पवित्र करनेवाली तथा मोक्षप्रदान करने वाली सभी पुरियों में सबसे श्रेष्ट श्री अयोध्या जी की सर्वदा विजय हो ।। २ ।। जिसमें सदाचार निष्ठ भगवान् के नाम रूप लीलाधाम अनुरागी श्रीरामभक्ति में आशक्त चित्त सुन्दर रसिक श्रीवैष्णव सज्जन सदा निवास करते हैं । और रघुकुल में प्रगट होने वाले भगवान् श्री राम जी अपनी अभिन्नात्मा श्री सीता जी एवं उनके अंशभूता नित्य परिकरों (पार्षदों) समेत जिन श्री अयोध्या जी में नित्य निवास करते हैं । सर्व वैकुण्ठ शिरोमणि और मोक्ष देनेवाली, परात्पर ब्रह्म श्री राम जी की नगरी श्री अयोध्या जी की सदा विजय हो ।। ३ ।। जिन श्री अयोध्या जी में सैकड़ों

अति पवित्र तीर्थ सदा निवास करते हैं। परमानन्द प्रदायिनी जिन श्री अयोध्या जी के वर्णन के लिये उत्तम मुनिजन सर्वदा ध्यानमग्न रहते हैं। जहाँ की रजको अपने मनोरथ सिद्धि के लिये श्रीब्रह्मादिक सभी देवता चाहते रहते हैं। उन मोक्षप्रदायिनी, सर्ववैकुण्ठ शिरोमणि, परमपुरुष श्रीरामजी की प्रियनगरी श्रीअयोध्याजीकी सदा विजय हो ॥ ४ ॥ जिन श्री अयोध्या जी में सभी वनों में श्रेष्ट, श्री सीताराम जी का नित्य विहारस्थल श्रीप्रमोदवन अपने दिव्य वैभव युक्त प्रकाशमान (शोभित) है। औरजहाँ पर सभी पावन सरिताओं (नदियों) में श्रेष्ट श्रीसरयूजी तथा रत्नाचल (मणिपर्वत) शोभायमान है। जिसको अपने आत्मस्वरूप से श्रीब्रह्मा विष्णु महेश आदि समस्त मुनिजन सर्वदाध्यान करते हैं। जिससे सर्वदा सबको दिव्य आनन्द प्राप्त होता है, वह सर्ववैकुण्ठ शिरोमणि, पूर्णतम ब्रह्म, परमात्मा श्री राम जी की प्रिय नगरी श्रीअयोध्या जी की सर्वदा जय जय हो ॥ ५ ॥

अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं य कारो विष्णुरुच्यते। धकारो रुद्र रूपश्च अयोध्यानाम राजते। सर्वोपपातकैर्युक्त ब्रह्महत्यादि पातकैः। नायोध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः ॥ स्कन्द पु० वैष्णवखं० अयोध्या माहात्म्य अ० १ श्लोक ६०–६१ ॥ अर्थ— अकार को ब्रह्मा और य कार को विष्णु एवं ध कार को रुद्र (शंकर) रूप कहा जाता है, इसप्रकार, ब्रह्मा विष्णु महेश ये त्रयदेव श्री अयोध्या नाम में विराजते हैं ॥ ॥ ६० ॥ सभी उपपापों के युक्त ब्रह्महत्या इत्यादि महान पाप मिलकर भी अयोध्या जी की महिमा का सामना नहीं करते हैं। अर्थात् अयोध्यानाम स्मरणमात्र से सभी प्रकार के छोटे बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। उन श्री अयोध्या जी की ऐसी अपार महिमा जानो ॥ ६१ ॥

स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड अ० १० पृ० ७६४–६५ से उद्धृत विषय ॥

मन्वन्तर सहस्रैस्तु काशीवासेषु यत्फलम्। तत्फलमं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते ॥ २७ ॥ गया श्राद्धश्च ये कृत्वा पुरुषोत्तम दर्शनम्। कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौ दाशरथीं पुरीम् ॥ २८ ॥ मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि। तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते ॥ २९ ॥ पुष्करेषु प्रयागेषु माघेवा कार्तिके तथा। तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते ॥ ३० ॥ कल्पकोटि सहस्राणि ह्यवन्ती वसतोहियत। तत्फलं समवाप्नोति सरयू दर्शनकृते ॥ ३१ ॥ षष्ठिवर्ष

सहस्राणि भागीरथ्यावगाहजम् । तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथी पुरीम्
॥ ३२ ॥ निमिषं निमिषार्द्धं वा प्राणिनां राम चिन्तनम् । संसार कारणा ज्ञान
नाशकं जायते ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ यत्र कुत्रस्थितो यस्तु ह्योध्यां मनसा स्मरेत् ।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तर शतैरपि ॥ ३४ ॥ जलरूपेण ब्रह्मैव सरयू मोक्षदा
सदा । नैवाऽत्र कर्मणो भोगो रामरूपो भवेन्नरः ॥ ३५ ॥ पशुपक्षि मृगाश्चैव
येचान्ये पापयोनयः । तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनं यथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—हजारों मन्वन्तर तक सदाचारपूर्वक काशी में निवास करने का जो फल मिलेगा, वही फल श्री सरयू जी के दर्शन मात्र से प्राप्त होगा ॥ २७ ॥ गया में श्राद्ध करके तव पुरुषोत्तम श्री जगन्नाथ जी का दर्शन करने से जो फल प्राप्त होगा, वहफल कलियुग में दाशरथी श्री राम जी की श्री अयोध्यापुरी के दर्शन मात्र से प्राप्त होगा। ऐसा शास्त्र कहते हैं ॥ २८ ॥ यदि मनुष्य मथुरा में एक कल्प तक निवास करे, उसमे जो फल होगा, वह फल श्री सरयू जी के दर्शन से प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ पुष्कर के सभी स्थानों में प्रयाग के सभी स्थानों में, माघमास अथवा कार्तिक मास में पूर्ण विधि से वास करने पर जो फल प्राप्त होगा, वह फल श्री सरयू जी के दर्शन मात्रसे प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ करोड़ों हजार कल्प उज्जैन में वास करने से जो फल होगा, वह फल श्री सरयू जी के दर्शन से होगा ॥ ३१ ॥ शाठ हजार वर्ष श्री भागीरथी गंगा में स्नान करने का जो फल होगा, वह कलियुग में दाशरथी श्री राम जी की श्री अयोध्यापुरी के दर्शनमात्र से हो जायेगा ॥ प्राणियों को एक पल या आधा पल ही श्री राम जी का चिन्तवन जन्ममरण के कारण अविद्याजनित अज्ञान को निश्चय कर नाश करने वाला है ॥ ३३ ॥ कहीं भी रहता हुआ जो जीव मनसे श्री अयोध्या जी का स्मरण करता है, तो उसका पुनः संसारमें सैकड़ों कल्पान्तरों तक जन्म नहीं होता है, अर्थात् धाम महिमा के प्रभाव से मोक्ष रूप नित्य श्री अवध को प्राप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ श्री सरयू जी में जलरूप से साक्षात् ब्रह्मतत्त्व ही प्रवाहित होता है। जिसमें स्नान करने से प्राणीं सर्वदा मोक्ष पाता है। श्री सरयू जी में स्नान के वाद फिर कर्मों का भोग-वन्धन नहीं ररता है। मनुष्य श्रीरामरूप होकर भगवान् श्री राम जी के नित्य श्री साकेतधाम को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ पशु, पक्षी, मृगाइत्यादि पापयोनियां वे भी श्रीअवधधाम एवं श्री सरयू जी के संस्पर्श से मोक्षधाम चलेजाते हैं।

जैसे श्रीराम वचन हैं कि—"अति प्रिय मोहिं इहाँ के वासी । मम धामदापुरी सुखरासी" ॥ और श्री सरयू जी की महिमा बताई है कि—"जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं वासा ॥ रा० च० मा० उ० कां० ४ दो० ॥ अर्थ—यह लीला अवध और इसमें निवास करने वाले मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । यह माधुर्य रूप में श्री अवधधाम हमारे नित्य श्री अवधधाम को देनेवाला (प्राप्त करनेवाला) है । और इन श्री सरयू जी में स्नान करने से विना प्रयास किये ही मनुष्य मेरे निकट निवास पाते हैं । अर्थात् सामीप्यमुक्ति पाते हैं ॥ श्रीसीताराम वचनामृत पृ० १२२ से १२४ तक श्रीअवध महिमा ॥

दो०-वैकुण्ठादिक लोकसब; यद्यपि परमपवित्र । तिन सबते सौगुन प्रिये; अवध सु भूमि विचित्र ॥ १ ॥ कोटिजन्म जप तप करे; लहे दर्श एकबार । किन्तुतासु महिमा अमित, वरणि को पावै पार ॥ २ ॥ कोटिजन्म जग में कदा, करै सु तप जब जीव । पावै अवध निवास तब; प्रिये कृपा की सींव ॥ ३ ॥ मैं चाहौं जाको प्रिये, अपनावन करि प्यार । वाको देउँ बसाय मैं, सन्तत अवध मझार ॥ ४ ॥ प्राणप्रिये बिन ममकृपा; करै प्रयत्न अपार । पावै नहीं निवास कोउ, कबहूँ अवध मझार ॥ ५ ॥ अवधनिवासी जीव जो, सब जानिय ममरूप । धाम उदार प्रभावते, पइहैं सहज स्वरूप ॥ ६ ॥ प्राणवल्लभे अवधकी; महिमा अकथ अनूप । याकी कृपाकटाक्ष जिव, पावत सहज स्वरूप ॥ ७ ॥ जहाँ सकृत ममपग परत, महिमातासु अपार । अवधमाहिं सन्तत बसौं; करौं विनोद विहार ॥ ८ ॥ महिमा वरणै अवध की; ऐसो को मतिमान । तुम्हरी कृपाप्रसाद जिव, करै हृदय अनुमान ॥ ९ ॥ जाके हृदय निकुंज में; हम दोउ करैं विहार । तब प्रभाव श्रीअवध को, दरशै बुद्धिमझार ॥ १० ॥ पुनः—श्रीसरयू महिमा—छन्द—यह श्रीसरयूसरित परमपावन अघहारी । दरश परश जे करहिं होहिं ममपद अधिकारी ॥ ३ ॥ कैसेउ पापी अधम तजै तन सरयू तीरा । अवसि जाय ममधाम सहै नहिं पुनि भवभीरा ॥ ४ ॥ जे सरयूजल पान करत तिनके अघसारे । नाशत सकल समूल कहत श्रुति सन्त पुकारे ॥ ५ ॥ जो बसि सरयू तीर सततसुमिरत ममनाम । ते सबसे प्रियमोहिं बिकौं तिनकर बिनदामा ॥ ६ ॥ यद्यपि तीरथ

अमित सकल श्रुति शास्त्रन गाये । पर श्रीसरयूमहिम अपर ममहृदय न आये ॥ ७ ॥ मैं नित नवलविहारकरौं सरयूसरितीश । इनकीमहिमा अतुल अकथ नाशत भवभीरा ॥ ८ ॥ जेहिजनको मैंचहौं याहि लेवौं अपनाई । तेहिको सरयू निकट वास मैं देउँ सदाई ॥ ९ ॥ बिन ममकृपाकटाच्छ करै किन कोटि प्रयागा । पर श्रीसरयू सुतट निकट कोउ लहै न वागा ॥ १० ॥

अयोध्या नगरी नित्या सच्चिदानन्द रूपिणी । यस्यांशेन हि वैकुण्ठा गोलोकादि प्रतिष्ठितम् ॥ पूर्णः पूर्णतमः श्रीमान् सच्चिदानन्द विग्रहः । अयोध्यां क्वापि सन्त्यज्य पादमेकं न गच्छति ॥ श्री साकेत महिमा नामक पुस्तक के पृ० ७ में वशिष्ट संहिता का प्रमाण है ॥ पुनः उसी पृ० में शुक संहिता का प्रमाण है कि—पुरातनमिदं स्थानमस्माकं तु सदैव हि । कोशलाख्यं पुरं दिव्यं प्रलयेऽनंश्यति प्रभो । अविनश्वर-मेवैकमयोध्या पुरमद्भुतम् । तत्रैव रमसे नाथ ! आनन्द रस प्लाविता ॥ अर्थात् श्री सीता जी श्री राम जी से कहती हैं कि—हे नाथ ! हम लोगों का यह पुरातननिवास स्थल है । यह कोशला नामक पुरी का प्रलय में भी नाश नहीं होता है, यह पुरी तो अविनाशी है । ऐसा अद्भुतपुर तो एकमात्र अयोध्या ही है; हे नाथ ! आप यहीं पर आनन्द रस मगन होकर सर्वदा रमण करते हैं । पुनः पृ० १० में श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर का प्रमाण है कि—

शीतान्त सिन्ध्वाप्लुत एव धन्यो गत्वा परब्रह्म सुर्विाचितोऽथ ।
प्राप्यं महानन्द महाब्धिमग्नो नावर्तते जातु पुनः ततः सः ॥
परं पदं सेवमुपेत्य नित्यममानवो ब्रह्म पथेन तेन ।
सायुज्यमेव प्रतिलभ्य तत्र प्राप्यस्य सन्नन्दति तेन साकम् ॥

अर्थ—भगवद्धाम को प्राप्त जीव भगवान् श्री राम जी को प्राप्तकर संसारताप हारक अत्यन्त शीतल प्रभु के कृपामृत महासागर में अवगाहन कर आनन्द के अगाधनिधि में निमग्न हो जाता है । और सर्वदा प्रभु की सेवा के अवर्णनीय आनन्दरस का मधुर आस्वादन करता है । पुनः यह जीव उस श्री साकेत को छोड़कर कभी मर्त्यभूमि (मृत्युलोक) में नहीं आता है । सर्वदेवों से पूजित होकर वह दिव्यशरीर प्राप्त करके अर्चिरादिमार्ग से भगवान् के सनातन सर्वोत्कृष्ट साकेत लोक को प्राप्त करके भगवान् श्री सीताराम जी के साथ सदा ही नित्यलीला केलि का आनन्द अनुभव करता है । फिर उसको मृत्युलोक में आने का न तो मन ही होता है, न

जाना ही पड़ता है। श्री सीताकिंत महिमा पुस्तक के निर्माता व प्रकाशक श्रीअवध-किशोरदास जी महाराज श्रीरामानन्द आश्रम श्रीजनकपुर धाम वाले हैं।

अब श्री देवस्वामी अपर नाम काष्ठजिह्वास्वामी जी के एक पद का पाठक-वृन्द रसास्वादन करें—

अवध की महिमा अपरम्पार। गावत हैं श्रुतिचार॥ निश्चित आनन्द समाधिन में जो, ध्याई बारम्बार। ताते नाम अयोध्या गायो, यह ऋग्वेद पुकार॥ रजधानी परब्रह्म कंचनमय, आठचक्र नवद्वार। ताते नाम अयोध्या पावन; अस यजु करत विचार॥ अ कार म कार उ कार देव त्रय, ध्याई जो लखि सार। ताते नाम अयोध्या ऐसो; सामकरत निरधार॥ अग जग कोश जहाँ अपराजित, ब्रह्म 'देव' आगार ताते नाम अवध मनभावन, कहत अथर्व उदार॥ १॥ अवध सरिस दूसर पुर नाहीं। सीताराम सदा विहरत जहँ; आगम निगम कहाहीं॥ सब बैकुण्ठन केर मूल जो, रामभवन जहँ जाहीं। सत्‌चित आनँद धाम परम प्रिय; एकरस रहत सदाहीं। जाको ध्यान करत अघ नाशत, रामचरित दर्शाहीं। सीताशरण जाहि मुनिध्यावत, मेरे सदन नहाँहीं॥ २॥

योगेश्वर्ययश्च कैवल्यं जायते यत्प्रसादतः। तद्वै ध्याये योगतत्त्वं रामचन्द्रं पदं भजे॥ योगतत्त्वोपनिषद् अ० १ मं० १॥ सत्यमहावाक्य सिद्धान्त महाविद्याकलेव-रम्। विकलेवर कैवल्यं रामचन्द्र पदं भजे॥ महावाक्योपनिषद् अ० मं० १॥ यद्दिव्यनाम स्मरतां संसारो गोष्पदायते। स्वानन्य भक्तिर्भवति तद्रामपदमाश्रये॥ कलि-सन्तरणोपनिषद् अ०१ मं०१॥ जाबाल्युपनिषद् वेद्य परतत्त्व स्वरूपकम्। पारमैश्वर्य विभवं रामचन्द्र पदं भजे॥ जाबाल्योपनिषद् अ०१ मं०१॥ ईशाद्यष्टोत्तरशत वेदान्त-पटशालयम्। मुक्तिकोपनिषद् वेद्यं रामचन्द्रपदं भजे॥ उपर्युक्त सभी मन्त्र त्रिपाद-विभूति (दिव्य श्री साकेतधाम) नामक पुस्तक के पृ० ३-४ से उद्धृत किये गये हैं। यह पुस्तक पं० श्री अवधकिशोरदास जी महाराज श्री रामानन्द आश्रम श्री जनकपुर धाम वालों ने प्रकाशित करवाई है। वहाँ अभी प्राप्त होती है। इन सभी मन्त्रों का तात्पर्य यही है कि त्रिपाद्विभूति नायक परब्रह्म श्री रामचन्द्र जी की प्राप्ति ही

जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है, सभी शास्त्रों का अन्तिमसार तत्त्व उन्हीं के दिव्यधाम का निवासी बनकर उनकी सेवा का चिन्मय रसपान करना ही निर्विवाद सिद्धान्त है। इन मन्त्रों का अर्थ श्री वैष्णव विद्वानों से समझ लेना चाहिये ॥ पुनः पृ० ६ में लिखा है कि—

तदेव त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठस्थानम्, तदेव परमसाकेत महाकैवल्यं । तदेवाबाधित परमतत्त्व विलास विशेषमण्डलम् ॥ त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् उ० २ अ० ७ मं० ७ ॥ वही त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ स्थान है। वही परमधाम साकेत है। वही महाकैवल्य मुक्ति है, वही त्रिकालाबाधित परमतत्त्व है। वही रसनिष्ठ संतों के नित्य दिव्य चिद्विलास का विशेष मण्डल है। वेदों ने परब्रह्म के उसधाम को श्री अयोध्या जी के नाम से प्रतिपादन किया है। यथा—त्रिपाद्विभूति (अयोध्या) ही साकेतधाम है ॥ तद्विष्णोः परमपदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ यजुर्वेद अ० ६ मं० ५ ॥ भगवान् विष्णु के उस परमपद को भगवद्रहस्य जानने वाले दिव्यसूरि सदा देखते हैं। यह परमपद महाआकाश में सूर्यमण्डल की भाँति महान् तेज का विस्तार करता हुआ नित्य स्थित है। इस मन्त्र में विष्णुशब्द का अर्थ त्रिदेवों में गिने जाने वाले चतुर्भुज रूप का बोधक नहीं है। यहाँ पर विष्णुशब्द सर्वव्यापकत्व का द्योतक परब्रह्म का बोधक है। परब्रह्म द्विभुज ही है, चतुर्भुज नहीं। देखिये यजुर्वेद अ० ५ मं० १६ —उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाप्रयच्छ दक्षिणा-दोतसव्यात् ॥ और यजुर्वेद अ० २५ मं० १२—यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ अर्थ—हमारे दोनों हाथों को सम्पत्ति से भरपूर करदो। आप अपने दहिने और बायें दोनों हाथों से हमारे कल्याण के लिये दान दो। इसके पूर्व मन्त्र में "विष्णोर्नु कं वीर्याणि" द्वारा जिस ब्रह्म का महत्त्व कहा गया है वह द्विभुज है, यह बात उसके दूसरे मन्त्र में स्पष्ट कर दी गयी है। "यस्य बाहू भुजौ जगत्त्राणा-वितिशेषः" कहकर इसी बात का समर्थन किया है। वे द्विभुज परब्रह्म त्रिपाद्विभूति नायक अयोध्यापति श्री राम जी ही हैं। यह बात अथर्ववेद १० काण्ड १ अनु० २ सू० २६ म० में स्पष्ट कर दी गई है। यथा—योवैतां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् । तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ अर्थ पीछे देख लिया जाये ॥ पुनः—

ॐकारार्थं तयायातं तुर्योङ्कारार्थभासुरम् । तूर्यं तुर्यं त्रिपाद्राम स्वमात्रं कलयेऽन्वहम् ॥ वेदशिखोपनिषद् अ० १ मं० १ ॥ अर्थ—जो ओंकार के अर्थ विचार से समझ में आते हैं। जो सबसे परे हैं, उन त्रिपाद्विभूति पति (स्वामी) श्री राम जी का मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ। पृ० १३ में-बाह्यान्तस्तारकाकारं व्योमपञ्चक विग्रहम् ।

राजयोगैक संसिद्धिं रामचन्द्रमुपास्महे ॥ शु०यजु० मण्डल ब्राह्मोपनिषद् अ०१ मं० १ ॥ पृ० ३६ में—अयोध्या नन्दनी सत्या धाम साकेत इत्यदपि । कोशला राजधानी च ब्रह्म पूरपराजिता ॥ अष्टचक्रा नवद्वारा विमला धर्मसम्पदा ॥ शिवसंहिता पटल ५ अ० २० ॥ उपर्युक्त सभी मन्त्र पृ० ४७६ तथा ८० में प्रकाशित त्रिपाद् महाविभूति (दिव्य साकेतधाम) नामक पुस्तक से लिये गये हैं ॥ अब पाठक भली भाँति समझ गये होंगे कि अनन्त वैकुण्ठों का मूलाधार नित्य अयोध्या है । उसके निरङ्कुश एकामत्र पति (स्वामी) श्री राम जी हैं । वह अवध कभी भी तिरोहित नहीं होती है । उसके स्वामी श्रीराम अपनी परम अह्लादिनी शक्ति श्री सीता जी के साथ नित्यपार्षदों से सर्वदा सेवित होते हैं । कुछ महानुभाव अनजान से ऐसा कहा करते हैं, कि सद्ग्रन्थों आर्षवचनों में साकेत शब्द नहीं आया है । वे सज्जन इस श्रीधाममाधुरी का आद्योपान्त विचार पूर्वक अध्यन करेंगे, तो कई बार साकेत शब्द दीख पड़ेगा । कुछ इंगलिशमैन जिनने आधुनिक इतिहास उपन्यास पेपर फिल्मों के गाने और पी० एच० डी० करके डाक्ट्रेट प्राप्त करताओं की लिखी थियेशिशें ही पढ़ी हैं । संस्कृत भाषा का अध्यन न होने के कारण वेद उपनिषद संहिता स्मृतियाँ पुराण और पूर्व इतिहासों का अध्यन नहीं किया है, वे यत्र तत्र ऐसा कहते हैं कि– श्री राम जी तो त्रेतायुग में श्री दशरथ जी के पुत्र हुये थे । वह अब नहीं हैं । त्रेतायुग के पूर्व भी नहीं थे । तब त्रिपादविभूति के नायक कब और कैसे होगये हैं । यदि हैं तो दिखाओं कहाँ हैं । यह कहना उन बेचारों की बुद्धि के अनुसार ठीक ही है । क्यों कि आत्मा परमात्मा एकपाद त्रिपाद्विभूति माया के कार्य ब्रह्म का स्वरूप पेपरों या फिल्मों के गानों में तो नहीं लिखा रहता तब वह बेचारे नासमझ बालक की भाँति मन में जो भी आता कहते रहतेहैं । अबोध होनेकेकारण प्रभुकी ओरसे दया क्षमाके पात्रहैं । गम्भीर विद्वान तो वेदशास्त्रों के द्वारा श्रीरामतत्त्व को समझें । किन्तु जिनको संस्कृत का साधारण बोध हो । वे महानुभाव प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश को समाहित चित से आदि से अन्त तक विचारपूर्वक पढ़लें । तो प्रभुकृपा से श्री सीताराम जी क्या हैं । इसका भलीभाँति पता लग जायेगा । त्रिपाद्विभूतिस्थ नित्य श्रीअवध और यह लीला अवध दोनों अभिन्न हैं । दोनों के नायक (स्वामी) श्री सीताराम जी हैं । गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज का डिमडिम घोष है कि—

चौ०— चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तन नहिं संसारा ॥

अण्डज पिण्डज स्वेतज उद्भिज इन चारिखानियों में जन्मधारण करनेवाला कोई भी जीव यदि श्रीअवध में शरीर त्यागता है, तो निश्चय ही वह संसारचक्र

(जन्ममृत्यु) के दुख से मुक्त होकर परब्रह्म श्रीसीताराम जी को प्राप्त होगा। कोई शंका करे कि यदि ऐसी बात है, तब बताइये कि उसके पापों का फल कौन भोगेगा। जो उसने जान जानकर किये हैं। उसका समाधान यह है कि पापी हो या पुण्यात्मा अपनी इच्छासे कोईभी देहधारी अपनोदेह अवधमें नहीं त्याग सकताहै करुणावरुणा-लय सर्वसमर्थ भगवान् श्री सीताराम जो जिस चेतन (जीव) को अपनाना चाहते हैं। वही जीव श्रीअवध में मरता (शरीर त्यागता) है। प्रभु किसको अपनाना चाहते हैं किसको नहीं, यह निर्णय शरीर त्यागने से ही हो जाता है। अनेकबार देखा गया है कि—प्रियतम जिसे अपनाना चाहते हैं, वह व्यक्ति सैकड़ोंमील दूरीपर बीमार था। किसी प्रकार भगवत्कृपा से श्री अवध आया और दो चार दिन में ही मर गया। और जो व्यक्ति अभी हृदयेश की कृपापात्र होने की स्थिति योग्य नहीं हैं, ऐसे कई व्यक्ति श्री अवध में शरीर त्यागने का संकल्प लेकर रहते हुये भी अन्तिम समय पर दो चार दिनको ही बाहर गये वहीं सीताराम हो गये। यदि कोई भी जीव स्वतन्त्रता पूर्वक श्रीअवध में मरे और प्रभुकृपा प्राप्ति नहीं हो, तब युक्त शंका की मान्या हो सकती है।

जब कोई भी जीव अपनी इच्छा से श्रीअवध में मर नहीं सकता, प्रभु के संकेत से सब होता है। तब उनसे बड़ा और कौन ईश्वर है जो उनसे जवाब मांगेगा कि इस पापी को आपने किस कानून (नियम) से तार दिया। सभी वेद शास्त्र पुराण इतिहास उपनिषद् संहिता स्मृतियाँ भगवान को करुणासागर, पतितपावन, अधमउधारण, दीनबन्धु, गरीबनिवाज, अघनाशक, अहेतु की कृपासागर बतलाते हैं ही, तब यह आवजक्शन (आन्दोलन) कैसा कि पापी को भगवान् तार देंगे, तो उसका पाप कौन भोगेगा। शास्त्रों में ऋषियों के वचन निस्संदेह सत्य हैं। उन सभी आर्षग्रन्थों में भगवान् के नाम रूप लीलाधाम को पाप नाशक बताया है। तथापि हठ करना बालवत् चेष्टा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अस्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि श्री अवधधाम में शरीर छूटने पर जीवात्मा निश्चय ही श्री सीताराम जी को प्राप्त हो जाता है। पाठकगण एक पद का रसास्वादन करें।—

अवधपुर नित्य बसत सियराम। मंगलमयी पुरी अघनाशिनि; दायिनि मुद विश्राम॥ सीताराम नित्यलीलाथल; परम सोहावन धाम। जहँ निजपरि-कर संग विराजत; सन्तत श्यामाश्याम॥ करतविनोद मोद मंजुलनित; रसमय आठोयाम। निरखत दिव्यचक्षु अधिकारी; लहत परम अभिराम॥ जो जनध्या-

बस सतत अवध को, होवत पूरण काम । "गुनशीला" प्रीतम सु प्यार लहि, रटत निरन्तर नाम ॥

आज भी श्री अयोध्यापुरी में आध्यात्मिक वातावरण सदा विद्यमान रहता है । भागवत का यह श्लोक आज भी यहाँ चरितार्थ है ।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः, सुरेश लोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥

अर्थात् जहाँ भगवान् की कथा सुधा की नदियाँ नहीं बहती हों, जहाँ सन्त महात्माओं का समागम न हो, जहाँ भगवान् के विविध महोत्सव नहीं हों; चाहे वह स्वर्ग या ब्रह्मलोक क्यों न हो, वहाँ निवास नहीं करना चाहिए । ये तीनों देवदुर्लभ वस्तुयें श्री अवध में प्राप्त है ॥ गीतावली में श्री गोस्वामी जी ने लिखा है—"राम लखन रिपुदमन भरत के चरित सरित अन्हवैया । तुलसी तब कैसे आजहूं जानिबो रघुबर नगर बसैया ॥ जो प्रभु कथा सुधा में अवगाहन करते रहते हैं, वे आज भी श्री अयोध्यावासी वैसे ही हैं जैसे श्री राम जी के समय में थे । श्री स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज लिखते हैं—"श्री सरयूतट बीच वास सजिये तजिये जग, याही में कुशलात मोद मंगल अनुपम मग । श्रीसीतावर स्वच्छ सुयश गाइये एक रस, श्रीयुगलानन्य प्रयास बिना दम्पति कीजिए बस ॥ श्री महाराज जी कहते हैं श्रीअवध वास कीजिए और जगत् का त्याग कीजिए, इसी में मंगल है । श्रीअवध में रहकर श्री सीताराम जी के पवित्र सुयश गाइये और बिना प्रयास दम्पति श्रीसीताराम जी को वश कर लिजिए । श्रीस्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज ने लिखा है कि श्री अयोध्यावासी चार प्रकार के होते हैं, १—जिनका जन्म यहाँ हुआ है । २—जो बाहर से आकर यहाँ अखण्ड वास कर रहे हैं । ३—जो वर्ष में एकबार आते रहते हैं । ४—जो परिस्थिति वश अयोध्या नहीं आ रहे हैं. किन्तु मन सदा अवध के लिए छटपटाता रहता है । ये चारो प्रकार के अयोध्यावासी शरीर छूटने पर श्री सीताराम जी को प्राप्त करेंगे । अवध तजे तनु नहिं संसारा । श्री गोस्वामी जी का का यह डिमडिम घोष है कि श्री अवध में शरीर छूटने से संसार नहीं होना है, अर्थात् श्री अवध में निधन होने से श्री सीताराम जी की प्राप्ति अवश्य होगी । श्री अवध में निवास करने से जीवन में अनायास श्री सीताराम नाम गुण लीला का श्रवण तथा मरणोपरान्त श्री सीताराम जी महाराज की प्राप्ति है यही श्रीअवध का वर्तमान एवं अतीत का मङ्गलमय स्वरूप है ।

मिथिला-तैरभुक्तिश्च-विदेहनिमि काननम् । ज्ञानक्षेत्र कृपापीठं स्वर्णलाङ्गल पद्धतिः ॥ जानकी जन्मभूमिश्च-निरपेक्षा-विकल्मषा । रामानन्दकरी-विश्वभावनी—नित्यमङ्गला ॥ इति द्वादशनामानि यः पठेच्छृणुयादपि । स प्राप्नुयाद्ध्रुवंश्रेष्टं भुक्ति मुक्तिश्च विन्दति ॥ अ० २ श्लोक २२-२३-२४ ॥ बृहद्विष्णुपु० अन्तर्गत श्रीमिथिला माहात्म्य—तथा गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज कृत श्रीजानकी मंगल में-देश-सोहावन पावन वेदबखानिय । भूमितिलकसम तिरहुति त्रिभुवन जानिय ॥ ४ ॥ जहँ बस नगरजनकपुर परमउजागर । सीयलक्षि जहँप्रगटीं सवसुखसागर ॥ ५ ॥ और श्री रा० च० मा० बा० कां० के श्री मिथिलाप्रसंग में दो० २१२ में—पुररम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत विशेषी ॥ वापीं कूप सरितसरनाना । सलिल सुधासम मनिसोपाना ॥ गुंजत मंजु मत्तरसभृंगा । कूजतकल बहुबरन विहंगा ॥ बरनबरन-विकशे बनजाता । त्रिविधसमीर सदा सुखदाता ॥ दो०—सुमनवाटिका बागबन, विपुलविहंग निवास । फूलतफलत सुपल्लवत सोहतपुर चहुंपास ॥ २१२ ॥ बनइ न बरनत नगरनिकाई । जहाँजायमन तहाँ लोभाई ॥ चारुबजार विचित्रअँबारी । मनिमय विधि जनु स्वकर सँवारी ॥ धनिक वनिकवर धनद समाना । बैठे सकलबस्तु लै नाना॥ चौहट सुन्दर गली सोहाई । सन्तत रहहिं सुगन्ध सिचाई ॥ मंगलमय मन्दिर सब-केरे । चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥ पुर नरनारि सुभग शुचि सन्ता । धर्मशील ग्यानी गुनवन्ता ॥ अतिअनूप जहँ जनक निवासू । विथकहिं विबुध विलोकिविलासू । होत चकितचित कोटविलोकी । सकल भुवन शोभा जनु रोकी ॥ दो०-धवलधाम मनि-पुरट पट, सुघटित नाना भाँति । सियनिवास सुन्दरसदन, शोभा किमि कहिजाति ॥ २१३ ॥ सुभगद्वार सब कुलिशकपाटा । भूपभीर नट मागध भाटा । बनीविशाल बाजिगजशाला । हयगय रथ संकुल सबकाला ॥ सूर सचिव सेनप बहुतेरे । नृपगृह सरिस सदन सबकेरे ॥ २१४ ॥ इत्यादि—अखिलविश्व में एकमात्र श्री मिथिलानगर ही ऐसा है कि जिसमें नृपगृह सरिस सदन सबकेरे । अन्यत्र ठौर इसका विपर्यय (विलोम) रूप में व्यवहार रहता है । राजा के समान प्रजा के गृहों की कौन कहे मन्त्रियों के भी गृह नहीं होते हैं । किन्तु श्री मिथिला जी की यह उदारता है कि राजा प्रजा सभी के गृह एकसमान वैभव परिपूर्ण हैं । क्यों न हो जहाँ के—पुर नर नारि सुभग शुचि सन्ता । संतों के लिये भगवत्कृपासे सर्वत्र सम्यक् सुविधायें मिलती हैं । तभी तो श्री मिथिला जी की रम्यता को देखकर अखिलविश्व विमोहन भगवान् श्री राम जी अपने छोटे भाई श्री लक्ष्मणकुमार समेत परम प्रसन्न हुये । और नगर के बाहर कोट को ही देखकर चित चकित होने लगा । किसी के पास एक भी मनि

होती है, तो वह बहुत बड़ा सम्पत्तिवान समझा जाता है । किन्तु श्री मिथिला जी में तो सम्पूर्ण बाजार ही मणिमुक्ताओं से बना हुआ है । और उनमें रहने वाले भी सुभग एवं शुचि तथा सन्त स्वभाव के हैं । तभी तो श्रीराम जी का मनमधुप लुभा गया, श्री राम जी का मनमधुकर सन्त सरोजवन में ही मुग्ध होता है । अन्यत्र नहीं संतसमाज चाहे प्रवृत्तिमार्ग या निवृत्तिमार्ग का हो । पुनः आगे दो० २८६ में—बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेष । तेहि पुरकी शोभा कहत सकुचैं शारद शेष ॥ अन्यत्र नगरों में केवल सम्राट के महल में ही सोने के वर्तन रहते हैं । किन्तु श्री मिथिला जी में, हरितमणिन के पत्रफल, पदुमराग के फूल । इसीलिये तो—रचना देखि विचित्र अति मन विरंचि कर भूल ॥ २८७ ॥ वेनु हरित मणिमय सबकीने । सरल सपरब परहिं नहिं चीने ॥ कनककलित अहिवेलि बनाई । लखि नहिं परइ सपन सोहाई ॥ तेहिके रचि पचि बन्धबनाये । बिचबिच मुकुता दामसोहाये ॥ मानिकमरकत कुलिश पिरोजा । चीरिकोरि पचि रचेसरोजा ॥ किये भृंग बहुरंग विहंगा । गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥ सुरप्रतिमा खम्भन गढ़ि काढ़ीं । मंगलद्रव्य लिये सब ठाढ़ीं ॥ चौके भाँति अनेक पुराई । सिन्धुरमणिमय सहज सोहाई ॥ सौरभपल्लव सुभग सुठि, किये नीलमणि कोरि । हेमबौर मरकतघवरि, लसत पाटमय डोरि ॥२८८ रचे रुचिरवर बन्दनवारे । मनहुं मनोभव फंद सँवारे ॥ मंगल कलश अनेक बनाये । ध्वजपताक पट चमर सोहाये ॥ दीप मनोहर मणिमय नाना । अतिआनन्द न जाय बखाना ॥ एवं प्रकार से समग्र व्याह मण्डप ही मणिमाणिक हीरामोतियों से निर्मित था । तभी तो महाकवि सम्राट ने लिखा है कि—जेहि मण्डप दुलहिन वैदेही । सो बरणै असिमति कविकेही ॥ सबसे विचित्रता तो यह है कि—जनकभवन की शोभा जैसी । गृह गृह प्रतिपुर देखिय तैसी ॥ महाकवि का संकेत है कि; श्री जानकी जी के प्राकट्य के दिन श्री मिथिला जी में श्रीकिशोरी जी के अंशभूता अनेकबालिकायें प्रगट हुई थीं । उन सबके भी व्याह की तैयारी हो रही है । इसलिये जैसी मण्डप की शोभा सजावट श्री मिथिलेश जी के महल में है, वैसी ही शोभा प्रजावर्ग के घरों में भी है । आगे इसी बात का पुनः संकेत मिलेगा । यथा—नित नूतन मंगल पुर-माहीं । निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं । और-नित नव नगर अनन्द उछाहू । अर्थात नित्य नवीन उत्सव का आनन्द मंगल श्री मिथिला जी भर में होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि श्री राम जी के प्राकट्य वाले दिन श्री अवध में प्रजावर्ग के घरों में अनेक बालक अवतीर्ण हुये थे । और श्री जानकी जी के प्राकट्य समय श्री मिथिला जी में प्रजाओं के घरों में अनेक बालिकायें प्रगट हुई थीं । अस्तु

श्री सीताराम जी के ब्याह के पश्चात् बरात में आये हुये श्री अवध के सभी वरर्णों के अनेक बालकों का ब्याह श्री मिथिलावासी प्रजाओं में से अपने अपने कुल गोत्र परम्परानुकूल अनेक बालिकाओं के साथ होता रहा है। इसीलिये आचार्य चरण ने संकेत किया कि—नितनूतन मंगल पुर माहीं। अर्थात् आज इसके घरमें कल उसके घरमें नित्य ही कई कई घरों में ब्याह होते हैं। उन सभी प्रेममूर्तियों के विशेष आग्रह एवं प्रेमाकर्षण के कारण श्री चक्रवर्ति जी एवं भाइयों समेत श्री राम जी सखाओं के ब्याहोत्सव देखने को कई कई घरों में नित्य जाते हैं। इसीलिये उस आनन्दोत्सव में निमग्न घराती बराती सभी को—निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥ लिखा गया। बरात में श्री अवध आये हुये जो बालक ब्याह के योग्य थे. उनमें से अधिकांश बालकों का ब्याह श्री मिथिला जी में समान कुलों में हो गया, इसीलिये कविसम्राट श्री गोस्वामी जी ने लिखा कि—दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई। अर्थात् अनेक (कई) घरों में कई प्रकार का स्वागत सत्कार नित्य होता था। इस परमानन्द सागर में निमग्न होने के कारण—दशरथ गवन सोहाय न काहू। किसी भी श्री मिथिलावासी को चक्रवर्ति जी महाराज का श्री अवध के लिये जाना अच्छा नहीं लगता था। यद्यपि लीलारूप में भगवान् श्री राम जी चक्रवर्ति राजकुमार हैं, तथापि प्रत्येक श्री मिथिलावासी को परम सुलभ थे। यह सब श्री मिथिला धाम की ही उदारता है।

* श्री मिथिला-धाम वर्णन *

मेरो मिथिलापुर वैकुण्ठतिलक त्रिभुवन उजियारो है। त्रिभुवनउजियारो है प्राणधन जग से न्यारो है।। जन्मभूमि ममपुरी सोहावनि, सुमिरत उरअनुरागबढ़ावनि, त्रिविधिताप भवदापनशावनि रसकीखानि रसिकजनजीवन। गायगाययश थकेउ शेषविधि लहेउ न पारो है।मेरो०। रसकीमूरि धूरियापुरकी, मेटति अखिलताप जनउरकी, सेव्या सकलमुनिनकी सुरकी, आंदश्रोत अनुराग सुधुरकी। तृणपादप अरुबिहँग वनिवसत सुरपरिवारो है। मेरो०। कीनो अमलविमल जहँलीला, मङ्गलमयी मोदरसशीला, वहतत्रिविधि बरवायुरँगीला, ठौरठौर अतिरम्यरसीला। मरकतभवन सुवर्णविपिन जगमोहनिहारो है। मेरो०। प्रेमतरङ्गनि कमलाविमला, उठतीहलोरें उज्वल अमला, महलेमहलमें लुटत शशिकला, भनैरुचिरता अहहकोमला। निरखिरुचिरता चकितभयो जहँ सिरजनहारो है। मेरो०। ज्ञानशिरोमणि दाऊमेरे, सिखतज्ञान मुनिजन तिननेरे, मिलत न तुल्य जगतमेंहेरे, सुकशनकादि शिष्यजिनकेरे। अलखअनादि ब्रह्महूँजाके पहुंचोद्वारो है। मेरो०। प्रेममूर्ति सबबन्धुहमारे, रूपशीलगुणके उजियारे,

तृणतृण मोहिं यहाँ के प्यारे, पशुपच्छीहूँ जगतेन्यारे । कणकणमें यहदिव्यपुरी से प्रेम-हमारो है । मेरो० । रसिकरायको नातबनायो, दिव्यप्रेमको पाठपढ़ायो, बारबार बहु-भाँति छकायो, रसियाजहँ नाच्यो अरु गायो । 'दासकिशोर" त्रिशूलपाणिशिव पुररखवारो है ॥ मेरो० ॥

मेरीसुन्दर मिथिलापुरी सकललोकनते न्यारी है । लोकनते न्यारीहै प्राणधन जगउजियारी है ।। मेरीजन्मभूमि सुखकारी, महिमावरणी वेदनभारी, अतिप्रियमोहिं नगरनरनारी, जिनकोवन्दत विधित्रिपुरारी । कणकणमें है दिव्यज्योति निरखत अधि-कारी हैं । मेरी० । कमलाविमला सरितसोहाई, अमितसरोवर छवि मनभाई, प्रफुल्लित कमल परागउड़ाई, जहँ बनउपवन अरु अँवराई । गुंजतखगगण रंगरंगके मुनिमन-हारीहै । मेरी० । मेरेपिता जनकयोगेश्वर, मुनिजन जिनहिं बनावत गुरुवर, माता रानिसुनयना सुखकर, प्रेममूर्ति ममभ्रातमनोहर । सुमिरत जिनकीप्रीति जाउँ मैं सुरति विसारी है । मेरी० । मेरीसखी सहेलीप्यारी, जिनकीमहिमा जगउजियारी, पूजत जिनहिं सकलसुरनारी, मेरेसंगकी खेलनहारी । प्राणहुंते मोहिं परमपियारी सखहमारी हैं । मेरी० । जहँमैं शिशुविनोद बहुकीने फुलवारी के चरितनवीने, प्यारे जहँ आये रसभीने, धनुषतोरि जयमालालीने । कोहवरमें जहँ सखिननचाये अवधविहारी हैं । मेरी० । मिथिलाकी महिमामुनिध्यावैं, वेदविचारे थाहलगावैं, नारदशारद पार न पावैं, कवि 'जयरामदेव" गुणगावैं । मिथिलानामै लेइ जाउँतापर वलिहारीहै ॥ ॥ मेरी० ॥

* श्री अवधधामवर्णन *

मेरो अवधधाम ब्रह्माण्ड मुकुटमणि मङ्गलकारीहै । मङ्गलकारीहैं प्रियाजू मङ्गलकारीहै॥ ललितललित जहँ नितनइलीला मुनिजनमनन विमोहनशीला, वरसेनित नवनेहरसीला, गावतशुकपिक गानरँगीला । कंचनभवन प्रमोदविपिनकी शोभान्यारी है । मेरो० । कुंजकुंज आनन्दअपारा, निर्मलजल सरयूकीधारा घरघर भक्तिभरे भण्डारा, कोउ न पूछे मुक्तिकाद्वारा । द्वारपाल हनुमन्तलाल सन्तनहितकारीहैं । मेरो० । केलिकलितलखि आनन्दमूला, वरसें सुरगण सुरतरुफूला, नित्यबसन्त पवनअनुकूला, जनकलली जहँ झूलैंझूला । कोटिजन्म तपकिये होयदर्शन अधिकारीहै । मेरो० । नितगलियनमें धूम मचाऊँ, होलीमाहिं रंगरसछाऊँ, श्रावणमें झूलनसुखपाऊँ, शरदसमय रसरासरचाऊँ । सखनसंग मृगयाबनखेलूँ धनूशिकारी हैं । मेरो० । परमसनेही ममपितुमाता, लक्ष्मण भरतशुत्रहनभ्राता, केवटसरिस मित्रसुखदाता; मिथिलावासिनसों दृढ़नाता । कोउ न जानत सखिनसंग जो प्रीतिहमारी है ॥ मेरो० ॥

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

❀ श्रीमते भगवते रामानन्दाचार्याय नमः ❀

अथ अनन्त श्रीस्वामी अग्रदासजी कृत

❀ ध्यानमञ्जरी प्रारम्भः । ❀



❀ छन्दरोला ❀

सुमिरौं श्रीरघुवीर धीर रघुवंश विभूषण । शरण गहे सुखराशि हरत अघसागरदूषण ॥१॥ सुन्दर राम उदार बाण कर शारँग धारी । हियधरि प्रभुको ध्यान विदुष जन आनँदकारी ॥२॥ अवधपुरी निजधाम परम अतिसुन्दर राजै । हाटक मणिमय सदन नगनकी कांति विराजै ॥३॥ पौँरि द्वार अतिचारु सुहावन चित्रित सोहैँ । चंपतारमंदार कल्पतरु देखत मोहैँ ॥४॥ भवनभवन चित्राम चित्रकी रंभा सोहैँ । वनज सुतनकी पाँति कांति गोखन मग जोहैँ ॥५॥ तोरण केतु पताक ध्वजा तहँ परम सोहाई । मनो रघुवर हितकरन आय त्रिभुवन छविछाई ॥६॥ वीथी वगर बजार रतनखँचि ज्योंति उजासा । रहन न पावै तिमिर महजही होत प्रकासा ॥७॥ देखि पुरी छवि भरी मध्य के अटकत रथ रवि । हर्षहिँ वर्षहिँ सुमन विबुधजन निरखि पुरी छवि ॥८॥ श्रीरघुवर यश भरी पुरी वर वर की दायन । धर्मशील नरनारि सबै प्रभु सुयश परायन ॥९॥ गावत रघुवर चरित मिलत जिनतित ते भामिनि । स्वरअम कोकिलनाद रूप जनु दमकति दामिन ॥१०॥ तिन युवतिनको भाग वरणि कापै कहि आवै । शचि शारद नग सुता देखिकै मन ललचावै ॥११ अवध पुरिनकी अवधि यही श्रुति संमृति वरणी । ध्यानधरे सुखकरनि नाम उचरत अघहरणी ॥१२॥ करिकरि बहुत कलेश कहत उपमा जो गुणिजन । अन्यउक्ति सब अल्प अवधसम अवध भले बन१२ वापी कूप तड़ाग रतन सोपान बनाये । रहे अमलजलपूरि विकसि कल्हार जु छाये ॥१४॥ शीतल तरुकी छाँह विहँग कूजत मनभाये । चहूँ ओर आराम

लगत उपवन जु सुहाये ॥१५ ॥ तिनपर केकि कपोत कीर कोकिल किलकारत । सुरधरि तिनकी देह मनो प्रभुसुयश उचारत ।१६। भूमि रहे लगि डार भार फल फूलन भारी । पथिकजनन फलदेन मनहुँ तिन भुजा पसारी ॥१७॥ निकटहिँ सरयू सरितधरे अस उज्वल धारा । भवसागर को तरण विदित यह पोत उदारा ॥१८॥ हरण पाप त्रयताप जनन चिंतित फल देनी । सुकृतीजन आरोह सुदृढ़ वैकुण्ठ निसेनी ॥१९॥ तीर नरनकी भीर लगत अस परम सुहाये । मनहुँ व्योमको त्यागि अमरगण सेवन आये ॥२०॥ करें जो मज्जन पान धन्य बड़-भाग जननके । विविध भाँतिके घाट तहाँ मन थकित मुनिनके ॥२१॥ नीर परम गंभीर चलत गहिरे स्वर गाजैं । तहाँ तीर बहु सघन कमल अतिसुन्दर राजैं ॥२२॥ कमल कमल के मध्य यूथ मिलि भँवर गुँजारैं । मानहुँ मुनि-जन वृन्द वेदध्वनि शब्द उचारैँ ।२३। त्रिविध बयारि बहार बहत निशिदिन अघहारी । शीतल मंद सुगंध परम अति आनँदकारी।२४। बोलत चकवा कुण्ड तीर मन मोद बढ़ावैँ । मानहुँ परम सुदेश निकर मिलि गंधर्व गावैं ।२५। कानन तहाँ अशोक शोक तेहिं देखत भाजैं । विविध भाँति के वृक्ष सबै वृन्दा-रक राजैं ।२६। शाखा पत्र अनूप कहा कहौं शोभा उनकी । फलकुसुमन के झुंड निरखि सुधि रहति न तन की ।२७। कल्पवृक्षके निकट तहाँ यक धाम मणिनयुत । कंचनमय सब भूमि परम अति राजत अद्भुत ।२८। स्वर्णवेदिका मध्य तहाँ यक रतन सिँहासन । सिंहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन ।२९। ताके मध्य सुदेश कर्णिका सुन्दर राजै । अति अद्भुत तहँतेज वह्नि सम उपमाभ्राजै ।३०। तामधि शोभित राम नीलइन्दीवर ओभा । अखिलरूपअंभोधि सजलघन तनकी शोभा ।३१। शिरपर दिव्य किरीट जटित मञ्जुल मणिमोती । निरखि रुचिरता लजित निकर दिनकरकी ज्योती ।३२। कुण्डल ललित कपोल युगल अति परमसुदेशा । तिनको निरखि प्रकाश लजित राकेशदिनेशा ॥३३ मेचक कुटिल सुकेश सरोरुह नयन सुहाये। मुख पङ्कजके निकट मनहुँ अलिछौना

आये ॥३४॥ भृकुटी त्रयपद दुगुन मनहुँ अलिअवलि विराजै । नासा परम सुदेश वदन लखि पंकज लाजै ॥३५॥ चितवनि चारु कृपाल रसिक जन मन आकर्षत । मन्द हास मृदुबयन जननको आनँदवर्षत ॥३६॥ दीर्घ दीप्त ललाट ज्ञानमुद्रा दृढ़धारी । सुन्दर तिलक उदार अधिक छवि शोभित भारी ॥३७॥ परम ललित मणिमाल हार मुक्ता छवि राजै । उर श्रीवत्स सुचिन्ह कण्ठ कौस्तुमणि भ्राजै ॥३८॥ यज्ञोपवीत सुदेश मध्यधारा जु विराजै । उभय भुजा आजानु नगन जटि कंकण राजै ॥३९॥ चूनी रतन जराय मुद्रिका अधिक सँवारी । शोभित अद्भुत रूप अरुणकी छवि अनुहारी ॥४०॥ भूषण विविध सुदेश पीत पट शोभित भारी । लसत कोर चहुँओर छोर कल कञ्चन धारी ॥४०॥ रोमावलि बनिआइ नाभि अस लगति सुहाई । त्रिवली तामधि ललित रेखत्रय अति छवि छाई ॥४२॥ कटिपरदेश सुढार अधिक छवि किंकिणि राजै । जानु पुष्ट वरनि गूढ़गुल्फ अति ललित विराजै ॥४३॥ नूपुर पुरट सुचारु रचित मणि माणिक सोहैं । रव कल स्वरसंगीत सुनत परिजन मन मोहैं ॥४४॥ युगल अरुणपदपद्म चिन्ह कुलिशादिक मंडित । पद्मा नित्यनिकेत शरणागत भवभय खंडित ॥४५॥ दच्छिणभुज शर सुभग सुहावन सुन्दर राजै । दिव्यायुध सुविशाल वामकर धनुषविराजै ॥४६॥ षोडश वर्ष किशोर राम नित सुन्दर राजैं । रामरूपको निरखि विभाकर कोटिक लाजैं ॥४७॥ अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी । रूप सच्चिदानन्द वामदिशि जनक कुमारी ॥४८॥ नगर जरे छविभरे विविध भूषण अस सोहैं । सुन्दर अङ्ग उदार विविध चामीकर कोहैं ॥४९॥ अलक झलकता श्यामपीठ शोभित कलवेणी । सुन्दरता की सीवँ किधौं राजति अलिश्रेणी ॥५०॥ रचित सुविविध प्रकार माँग जरतार सवाँरी । मनहुँ सुरसरी धार बनी शोभा अस भारी ॥५१॥ पाटन की लर और बडे बड़े उज्वल मोती । सघन तिमिरके मध्य मनो उड़गणकी ज्योती ॥५२॥ रतन रचित मणि जटित शीश पर बिन्दा छाजै । ललित कपोल सुयुगल कर्ण ताटङ्क विराजै ॥५३॥ उज्वल भाल

सुचारु अमित उपमा अस सोहै । राजत राम सोहाग भाग को भवन किधौं है ।।५४।। गोरोचन को तिलक ललित रेखा बनि आई । उन्नत नासा सुभग लसत बेसरि जु सुहाई ।।५५।। भृकुटीनयन विशाल सौम्य चितवनि जगपावन । मानहुँ विकसित कमल वदन अस लगत सुहावन ।।५६।। अरुण अधरतर दशनपाँति अग लगति सुहाई । चारुचिबुकबिच तनक बिन्दु मेचक छबिछाई ।।५७।। कण्ठपोंत मणि ज्योति सुछवि मुक्ता वरमाला । पदिकरचित कलधौत विराजत हृदय विशाला ।।५८।। हेमतन्तुकर रचित अरुण सारी रँग झीनो । कंचुकि चित्रित चतुर विविध शोभित रँग भीनी ।।५९।। वर अंगद छवि देति बाहु अस लगति सुहाई । करन चुरी रँग भरी ललित मुँदरी बनि आई ।।६०।। पद्मराग मणि नील जटित युगककण राजैं । मनहुँ वनजकेफूल द्विरेफनि पँक्ति बिराजैं ।।६१।। लहँगा कटिपरदेश भाँति अति शोभित गहरी । अरुण असित सित पीत मध्यनाना रँगलहरी ।।६२।। हरित नगनकर जरित युगल जेहरि अस राजैं । तिनतर घुँघुरू औरअग्र बिछिया जुविराजैं ।।६३।। तिनपर नग जु अमोल ललित चूनी गणलाये । चरण चारुतल अरुण सहजही लगत सुहाये ।।६४।। अतुलित युगलस्वरूप कवन अस उपमा जिनकी । जेतिक उपमा दीस शवितकरि भासित तिनकी ।।६५।। यहि विधि राजत राम अवधपुर अवधविहारी । दम्पति परम उदार सुयश सेवक सुखकारी ।।६६।। दक्षिण भुज रिपुदलन गौर तन तेज उदारा । उभयहेतु अनुसार धरे व्रत खंडित भारा ।।६७।। शेष लये कर छत्र भरत लिये चवँर ढुरावैं । अनिल सुवन करजोरि सु प्रभुकी कीरति गावैं ।।६८।। अपनी अपनी ठौर नित्य परिकर बनि भारी । सुरति शवित विमलादि रहत नित आज्ञाकारी ।।६९।। जो जो जेहि अधिकार सचिव सेवा मन बासैं । वीनाधर सुरतान गान करि प्रभुहिं उपासैं ।।७०।। यही ध्यान उरधरै स्वयतन सुफल करेबा । भव चतुरानन आदि चरन बन्दैं सब देवा ।।७१।। यह दम्पति वर-ध्यान रसिक जन नितप्रति ध्यावैं । रसिक बिना ध्यान और सपनेहुं नहिंपावैं ७२

अमल अमृतरससार रसिकजन यहि रस पागैं । तेहिको नीरस ज्ञान योग सब ओछे लागैं ॥७३॥ परमसार यह चरित सुनत श्रवनन अघहारी । ध्यान परम कल्याण सन्तजन आनँदकारी ॥७४॥ तिन्हैं धूलि जनि कहौ कुटिलता पंक मलिनमन । यह उज्वल मणिमाल पहिरिहैं परम रसिकजन ॥७५॥ जगत ईश को रूप वरणि कहे कवन अधिकमति । कहाँ अल्प खद्योत भानुके निकट कहँ द्युति ॥७६॥ कहँ चातककी शक्ति अखिल जल चोंच समावै । कछुक बुन्द मुख परैं ताहि लै आनँद पावै ॥७७॥ सुनि आगमविधि अर्थ कछुक जो मनहिं सुहायो । यह मंगलकर ध्यान यथामति वरणि सुनायो ॥७८॥ श्रीगुरुसंत अनुग्रहते अस गोपुर वासी । रसिकजनन हितकरन रहसि यह ताहि प्रकासी ॥७९॥ ध्यान मञ्जरी नाम सुनत मन मोद बढ़ावै । श्रीरघुवरको दास मुदितमन अग्र सो गावै ॥८०॥

प्रभुका अवधपुरी निजधाम । यहाँ निवासी परमकृतारथ, सवविधि पूरण काम ॥ यद्यपि सब बैकुण्ठ वदतश्रुति, निरामय सुखधाम । किन्तु न प्रिय श्री अवधसरिस है; रघुवर हियअभिराम ॥ सन्तत जहँ विहरत सियवल्लभ; लहत परमविश्राम । प्रभुकी लीलाथली भली शुचि; सन्तनसुखद ललाम ॥ अवध-माहिं ततनजत जीवजो; लहत नित्य हरिधाम । जहँ "गुणशील" स्वरूप उजागर, विहरत परमअकाम ॥१॥ वन्दौं अवधपुरी सुखरासी । पावन परम सोहावन भावन, मणिमय परमप्रकासी ॥ सतचित आनँदमयी राम प्रिय, मुक्ति फिरत बनिदासी । सब "गुणशील" सिन्धु सियपिय को; दायक परमहुलासी ॥ २ ॥



—श्रीसीतानमस्कारमाला

भूमिजायै नमस्तुभ्यं सीतादेव्यै नमोऽस्तु ते । रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्ते रामवल्लभे ॥१॥
सर्वेश्वरि नमस्तुभ्यं नमस्ते करुणाब्धये । दुःखहन्त्रि नमस्तुभ्यं सुखदात्रि नमोऽस्तु ते ॥२॥
जगत्कर्त्रि नमस्तुभ्यं जगद्भर्त्रि नमोऽस्तुते । जगद्हर्त्रि नमस्तुभ्यं मुक्तिदात्रि नमोऽस्तु ते॥३
वसुधात्मजे नमस्तुभ्यं वसुदायै नमोऽस्तु ते । नमः शरण्यवर्यायै नमो दारिद्र्यनाशिनि ॥४॥
नमस्ते वेदवेद्यायै भक्तिलभ्ये नमोऽस्तु ते । नमस्ते वेदवन्द्यायै सर्वज्ञायै नमोऽस्तु ते ॥५॥
नमस्ते दिव्यदेहायै नमस्ते गुणवारिधे । नमस्ते दोषशून्यायै नमो लावण्यसिन्धवे ॥६॥
नमश्चामोघपूजायै ह्यमोघस्तुतये नमः । नमश्चामोघभक्तयै ते नमश्चामोघवन्दने ॥७॥
नमस्ते ज्ञेयवर्यायै ध्येयवर्यै नमोऽस्तु ते । नमो वदान्यवर्यायै रामपत्न्यै नमोऽस्तु ते ॥८॥
नमो निग्रहशून्यायै नमोऽनुग्रहशालिनि । नमोऽवगुणशून्यायै नमः सदगुणशालिनि ॥९॥
नमस्ते साधुशीलायै नमस्ते कीर्त्तिशालिनि । नमस्ते मन्त्रदात्र्यै ते नमस्ते मारुतेर्गुरो ॥१०॥
नमस्ते विश्वमूलायै नमस्ते विश्वरूपिणि । नमो विश्वशरण्यायै नमस्ते विश्वरक्षिणि॥११॥
नमः प्रपदनीयायै भजनीये नमोऽस्तु ते । नमस्ते कीर्त्तनीयायै स्मरणीये नमोऽस्तु ते ॥१२॥
नमस्ते पूज्यवर्यायै स्तुत्यवर्यै नमोऽस्तु ते । नमस्ते वन्द्यवर्यायै नमस्तेऽमोघदर्शने ॥१३॥
नमोऽचिच्चिद्विशिष्टायै नमोऽचिच्चित्स्वरूपिणि।नमोऽचिच्चिभिन्नायैनमोऽचिच्चिच्छरीरिणि १४
नमः कारणरूपायै कार्यरूपिणि ते नमः । नमो जगज्जनन्यै ते जगद्रूपिणि ते नमः ॥१५॥
नमस्त्रिदेववन्द्यायै त्रिदेवीवन्दिते नमः । नमः परात्परायै ते नमः सर्वावतारिणि ॥१६॥
नमो विभवरूपायै व्यूहरूपिणि ते नमः । नमस्तेऽर्चास्वरूपिण्यै नमोऽन्तर्यामिरूपिणि॥१७॥
नमस्ते विभुदे देवि नमस्ते विभुरूपिणि । नमस्ते विभ्वभिन्नायै नमस्ते विभुवल्लभे॥१८॥
नमस्ते विभुलोकायै नमस्ते विभुबुद्धये । विभुशक्त्यै नमस्तेऽस्तु नमस्ते विभुकीर्त्तये ॥१९॥
नमो जनककन्यायै नमस्ते जनकात्मजे । नमस्ते जानकीदेव्यै नमो जनकनन्दिनि ॥२०॥
नमो मैथिलकन्ये ते नमोऽस्तु मैथिलात्मजे । नमो मैथिलिमातस्ते मिथिलेशसुते नमः॥२१॥
मात्रे नमोऽस्तु सीतायै नमो वात्सल्यवारिधे । नमस्ते श्रुतिगीतायै नमस्ते क्षितिनन्दिनि॥२२
नमस्ते मुक्तसेव्यायै नमस्ते मुक्तवन्दिते । नमस्ते विघ्नहन्त्र्यै च नमस्ते मङ्गलप्रदे । २३॥
रामाभिन्ने नमस्तेऽस्तु श्रियः श्रियै नमोऽस्तु ते । नमस्ते दिव्यवस्त्रायै नमस्ते दिव्यभूषणे ॥२४
नमः स्वयम्प्रकाशायै नमो भास्करभासिनि । नमः प्रपत्तिशिक्षित्र्यै नमः प्रपन्नरक्षिणि ।२५॥
नमस्ते सत्यसङ्कल्पे नमस्ते सर्वशेषिणि । नमश्चावाप्तकामायै सर्वशक्त्यै नमोस्तु ते ॥२६॥
भगवत्यै नमस्तेऽस्तु मन्त्रराजप्रदे नमः । नमस्ते दिव्यलोकायै नमस्ते दिव्यपार्षदे ॥२७॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । स्तान्नमस्कारमालेयं श्रीसीताम्बाप्रसादिनी॥२८॥

श्रीरामनमस्कारमाला

श्रीरामाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वहेतवे । नमो दुर्गुणशून्याय नमः सद्गुणसिन्धवे ॥१॥
विश्वकर्त्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वपालक । विश्वहर्त्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वतारक ॥२॥
नमस्ते व्यूहरूपाय परस्मै ब्रह्मणे नमः । नमो विभवरूपाय सर्वान्तर्यामिणे नमः ॥३॥
नमस्तेऽर्चावताराय सर्वावतारिणे नमः । नमस्ते चिदचिद्देह चिदचिच्छेषिणे नमः ॥४॥
नमस्ते दिव्यदेहाय दिव्यशक्ताय ते नमः । नमस्ते दिव्यलोकाय योगिध्येयाय ते नमः ॥५॥
नमः शरण्यवर्याय भक्तिलभ्याय ते नमः । नमस्ते चाप्रमेयाय नमस्ते सुखकारिणे ॥६॥
नमो जगन्निमित्ताय सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते । नमस्ते विश्वमूलाय सर्वज्ञाय नमोऽस्तु ते ॥७॥
नमश्चाधारशून्याय सर्वाधाराय ते नमः । नमस्ते सर्वपूज्याय सर्वप्रद नमोऽस्तु ते ॥८॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूप नमोऽस्तु ते । नमः शङ्कररूपाय विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥९॥
नमस्ते वेदगम्याय वेदवेद्य नमोऽस्तु ते । वेदकर्त्रे नमस्तेऽस्तु नमस्ते वेदरक्षक ॥१०॥
नमस्तेऽणुस्वरूपाय महद्रूपाय ते नमः । नमोऽन्तर्व्याप्तरूपाय वाह्यव्याप्ताय ते नमः ॥११॥
नमश्चान्तःप्रविष्टाय सर्वशासक ते नमः । नमो नित्यस्वरूपाय विभुरूपाय ते नमः ॥१२॥
नमः स्वयंप्रकाशाय नमः सूर्यादिभासिने । नमः पूर्णावताराय नमश्चापेषुधारिणे ॥१३॥
नमस्ते श्रवणीयाय कीर्त्तनीयाय ते नमः । नमस्ते स्मरणीयाय सेव्यपादाय ते नमः ॥१४॥
नमस्ते चार्चनीयाय वन्दनीयाय ते नमः । नमस्ते सर्वमित्राय सर्वेषां स्वामिने नमः ॥१५॥
नमस्तेऽस्तु शरण्याय भजनीय नमोऽस्तु ते । भक्तिलभ्य नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽमोघभक्तये ॥१६
नमो व्यापकरूपाय नमः साकेतवासिने । नमस्ते दुःखहर्त्रे च नमश्चानन्ददायिने ॥१७॥
नमः सत्यस्वरूपाय नमस्तेऽनन्तरूपिणे । नमः ज्ञानस्वरूपाय ब्रह्मणे च नमोऽस्तु ते ॥१८॥
उपेयाय नमस्तुभ्यं नमश्चोपायरूपिणे । प्रपद्याय नमस्तेऽस्तु भक्तिप्राप्याय ते नमः ॥१९॥
शक्तिदाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते शक्तिवारिधे । भुक्तिदाय नमस्तुभ्यं मुक्तिदाय नमोऽस्तु ते ॥२०॥
नमो भक्तारिहन्त्रे ते नमस्ते भक्तरक्षक । नमो दुर्जनहन्त्रे च नमः सज्जनबन्धवे ॥२१॥
नमः साधुपरित्रात्रे नमस्ते दुष्टनाशक । नमः स्थापितधर्माय नमोऽवताररूपिणे ॥२२॥
नमो दाशरथे तुभ्य कौशल्येय नमोऽस्तुते । नमस्ते ताटकाहन्त्रे नमः सुबाहुनाशक ॥२३॥
नमस्ते प्राप्तविद्याय नमस्ते मुनिपूजित । नमो रक्षितयज्ञाय मुनिस्त्रीतारिणे नमः ॥२४॥
नमो भञ्जितचापाय श्रीसीतोद्वाहिने नमः । नमः सौमित्रिसेव्याय नमस्ते वनवासिने ॥२५॥
बालिहन्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्ते सिन्धुसेतुकृत् । नमो रावणहन्त्रे च नमस्ते जानकीप्रिय ॥२६॥
नमस्ते पुष्पकारूढ नमो देवाभिवन्दित । नमोऽयोध्याऽधिराजाय नमस्ते भरतप्रिय ॥२७॥
वैष्णवभाष्यकार श्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । स्तान्नमस्कारमालेयं श्रीमद्रामप्रसादिनी ॥२८॥

* श्रीहनुमन्नमस्कारमाला *

हनुमते नमस्तुभ्यं वायुपुत्र नमोऽस्तु ते । आञ्जनेय नमस्तुभ्यं नमस्ते वायुनन्दन ॥१॥
नमस्ते रामदासाय रामदूताय ते नमः । नमोऽञ्जनाकुमाराय आञ्जनाय ते नमः ॥२॥
कपीन्द्राय नमस्तुभ्यं नमो राक्षसमर्दक । वज्राङ्गाय नमस्तुभ्यं नमो भक्तारिसूदन ॥३॥
वातात्मज नमस्तुभ्यं नमस्ते वायुवेगिने । गदाधारिन् नमस्तुभ्यं नमः पर्वतधारिणे ॥४॥
जितेन्द्रिय नमस्तुभ्यं नमो लङ्घितवारिधे । बुद्धिसिन्धो नमस्तुभ्यं नमो राक्षसमर्दिने॥५
नमः सीताशुचो हर्त्रे नमः सीतासुखप्रद । अक्षघातिन् नमस्तुभ्यं नमो लङ्काविदाहक॥६
नमस्ते रामतत्त्वज्ञ नमो रावणतर्जक । रामश्रित नमस्तुभ्यं श्रीसीतान्वेषिणे नमः ॥७॥
रामभृत्य नमस्तुभ्यं नमस्ते रामकिङ्कर । नमो यशःसमुद्राय नमस्ते बलसिन्धवे ॥८॥
नमस्ते जितवज्राय नमः शक्रादिसंस्तुत । सीताशिष्य नमस्तुभ्यं ब्रह्मणो गुरवे नमः॥९॥
विपत्तिघ्न नमस्तुभ्यं नमः सम्पत्तिदायिने । दुःखहारिन् नमस्तुभ्यं नमस्ते सुखकारिणे१०
गदाधर नमस्तुभ्यं नमस्ते चाद्रिधारिणे । नमस्ते भयहीनाय नमस्ते भयहारिणे ॥११॥
सर्वाराध्य नमस्तुभ्यं नमः सर्वफलप्रद । नमस्ते भक्तितत्त्वज्ञ नमो वेदान्तवेदिने ॥१२॥
ज्ञानप्रद नमस्तुभ्यं भक्तिप्रद नमोऽस्तु ते । शक्तिप्रद नमस्तुभ्यं मुक्तिप्रद नमोस्तु ते॥१३॥
नमश्चारिविजेत्रे ते नमस्ते विजयप्रद । भयशून्य नमस्तुभ्यं नमस्तेऽरिभयङ्कर ॥१४॥
नमस्ते स्वर्णवर्णाय नमस्ते वज्रदेहिने । नमस्ते दिव्यदेहाय मनोज्ञाय नमोस्तु ते ॥१५॥
नमो महाशरीराय महाशूराय ते नमः । नमस्ते कर्मवीराय महावीराय ते नमः ॥१६॥
महाज्ञानिन् नमस्तुभ्यं महाध्यानिन् नमोस्तुते । रामार्चक नमस्तुभ्यं नमः कीर्त्तनकारक१७
दयासिन्धो नमस्तुभ्यं नमस्ते दीनबन्धवे । ज्ञानसिन्धो नमस्तुभ्यं नमः सज्जनबन्धवे॥१८।
नमः प्रपत्तितत्त्वज्ञ नमः प्रपत्तिशिक्षिणे । नमः प्रपन्नवर्याय नमः प्रपन्नरक्षिणे ॥१९॥
नमस्ते ब्रह्मतत्त्वज्ञ नमस्ते ब्रह्मचारिणे । ब्रह्मस्तु नमस्तुभ्यं नमो ब्रह्मज्ञरक्षक ॥२०॥
नमः कुमन्त्रशक्तिघ्न नमस्ते राममन्त्रद । बाधाहर नमस्तुभ्यं नमो बाधकबाधक ॥२१॥
नमो जितखगेशाय नमो भूतादितर्जिने । रामस्तुत नमस्तुभ्यं नमस्ते रामगर्जिने ॥२२॥
नमस्ते वानरेन्द्राय देवस्तु नमोऽस्तु ते । नमस्ते वायुवेगाय वायुजाय नमोऽस्तु ते ॥२३
नमस्ते पूजनीयाय वन्दनीयाय ते नमः । नमस्ते कीर्त्तनीयाय स्तवनीयाय ते नमः। २४
आयुःप्रद नमस्तुभ्यं विद्याप्रद नमोऽस्तु ते । यशःप्रद नमस्तुभ्यं बलप्रद नमोऽस्तुते ॥२५
नमस्तेऽभीष्टदात्रे च नमस्तेऽनिष्टहारिणे । नमोऽवगुणशून्याय गुणाम्भोधे नमोऽस्तुते २६
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । स्तान्नमस्कारमालेयं श्रीहनूमत्प्रसादिनी ॥२७

* –श्रीरामानन्दाचार्यनमस्कारमाला *

रामानन्द नमस्तुभ्यं पुण्यसद्धाम ते नमः । यतीन्द्राय नमस्तुभ्यं नमो वेदान्तदीपक ॥१॥
नमो ब्रह्मोपदेष्ट्रे ते सुशीलात्मज ते नमः । नमो रामावताराय नमस्तुभ्यं जगद्गुरो ॥२॥
देशिकेन्द्र नमस्तुभ्यं नमो धर्माब्जभास्कर । यतिराज नमस्तुभ्यं नमः सद्धर्मरक्षक ॥३॥
नमो वादीभसिंहाय नमो वादिभयङ्कर । नमोऽस्तु दिग्विजेत्रे ते नमस्ते वादिदर्पहन् ॥४॥
भाष्यकार नमस्तेऽस्तु नमस्ते भाष्यलेखक । भाष्यबोद्धे नमस्तेऽस्तु नमस्ते भाष्यपाठक ॥५॥
सदाचारिन् नमस्तेऽस्तु सदाचारविदे नमः । सुधीन्द्राय नमस्तेऽस्तु मुनीन्द्राय नमोऽस्तु ते ॥६॥
महाचार्य नमस्तुभ्यं महाज्ञानाब्धये नमः । नमोऽस्तु गुणशून्याय सद्गुणाम्बुधये नमः ॥७॥
महासिद्ध नमस्तुभ्यं नमः सिद्धेन्द्रपूजित । नमः सिद्धिनिधानाय नमः सिद्धिप्रदायिने ॥८॥
नमः शिक्षाम्बुधे तुभ्यं शिक्षाप्रद नमोऽस्तु ते । नमो मङ्गलकर्त्रे ते मङ्गलाम्बुधये नमः ॥९॥
ज्ञाननिधे नमस्तुभ्यं ज्ञानप्रद नमोऽस्तु ते । नमः साधितसिद्धान्त नमः सिद्धान्तरक्षक ॥१०
भुक्तिप्रद नमस्तुभ्यं शक्तिप्रद नमोऽस्तु ते । भक्तिप्रद नमस्तुभ्यं मुक्तिप्रद नमोऽस्तु ते ॥११
कर्मच्छिदे नमस्तुभ्यं नमः संशयनाशिने । तत्त्ववेत्रे नमस्तुभ्यं नमस्तत्त्वप्रबोधक ॥१२॥
नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मबोधक ते नमः । नमस्ते वेदमर्मज्ञ नमो वेदान्तवेदिने ॥१३॥
नमो रहस्यवेत्रे ते रहस्यप्रद ते नमः । नमस्ते भक्तितत्त्वज्ञ भक्तितत्त्वनिधे नमः ॥१४॥
नमस्तारकदात्रे ते लब्धतारक ते नमः । नमो रामप्रपत्तिज्ञ नमो रामप्रपन्न ते ॥१५॥
ज्ञानसिन्धो नमस्तुभ्यं भक्तिसिन्धो नमोऽस्तु ते । दीनबन्धो नमस्तुभ्य भक्तबन्धो नमोऽस्तु ते १६
नमस्ते गुरुतत्त्वज्ञ गुरुनिष्ठाय ते नमः । नमो गुरुकृपापात्र नमस्ते गुरुसेविने ॥१७॥
नमो रामानुरक्ताय रामभक्ताय ते नमः । नमः पूजितरामाय स्तुतरामाय ते नमः॥१८
नमः कीर्तितरामाय श्रितरामाय ते नमः । नमो वन्दितरामाय रामासक्त नमोऽस्तु ते॥१९
नमो वैष्णववर्याय वैष्णवाचार्य ते नमः । नमो वैष्णवतत्त्वज्ञ वैष्णवतोषिणे नमः॥२०
नमस्ते श्रवणीयाय कीर्तनीयाय ते नमः । नमस्ते स्मरणीयाय सेव्यपादाय ते नमः॥२१॥
नमस्ते चार्चनीयाय वन्दनीयाय ते नमः । नमस्ते सर्वमित्राय सर्वेषां स्वामिने नमः॥२२
नमस्तेऽस्तु शरण्याय भजनीय नमोऽस्तु ते । भक्तिकृते नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽनन्तशक्तये ॥२३
दुःखहत्रे नमस्तुभ्यं सुखकर्त्रे नमोऽस्तु ते । नमो भक्तारिहन्त्रे ते नमस्ते भक्तरक्षक ॥२४॥
नमः सज्जनवन्धो ते नमः सज्जनरक्षक । नमो रक्षितधर्माय नाशिताधर्म ते नमः ॥२५
नमस्ते वेदरक्षित्रे नमस्ते वेदबोधक । नमस्ते दिव्यदेहाय दिव्यरूप नमोऽस्तु ते ॥२६॥
नमश्चाचार्यसम्राजे नमस्ते सर्ववेदिने । नमो धर्मस्वरूपाय रामरूप नमोऽस्तु ते॥२७॥
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मिता । रामानन्दनमस्कारमाला स्तान्मङ्गलप्रदा ॥२८॥

❋ श्री वैष्णवीय चार सम्प्रदाय की स्तुति ❋

श्रीरामजी की प्रातःकाल की स्तुति

भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी । हर्षित महतारी मुनिमन-हारी अद्भुत रूप निहारी ॥ लोचन अभिरामा तन घनश्यामा निज आयुध भुजचारी । भूषण बनमाला नयन विशाला शोभा सिन्धु खरारी ॥ १ ॥ कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता । माया गुण ज्ञाना तीत अमाना वेद पुराण भनन्ता ॥ करुणा सुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता । सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रकट भए श्रीकन्ता ॥ २ ॥ ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै । मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै । उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुतविधि कीन्ह चहै । कहिकथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥ ३ ॥ माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा । कीजै शिशुलीला अतिप्रिय शीला यह सुख परम अनूपा ॥ सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा । यह चरित जे गावहिं हरि-पद पावहिं ते न परहिं भव कूपा ॥ ४ ॥

दो०—विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार ॥

❋ श्री जानकी जी की प्रातःकाल की स्तुति ❋

भई प्रकट कुमारी भूमि विदारी जन हितकारी भयहारी । अतुलित छविभारी मुनिमन हारी जनक दुलारी सुकुमारी ॥ सुन्दर सिंहासन तेहि पर आसन कोटि हुता-सन द्युतिकारी । शिर छत्र विराजै सखिगण भ्राजै निज निज साजहिं करधारी ॥ सुरसिद्ध सुजाना हनहिं निशाना चढ़े विमाना समुदाई । वर्षहि बहु फूला मंगल मूला अनुकूला सियगुन गाई ॥ देखहिं सब ठाढ़े लोचन गाढ़े सुख बाढ़े उर अधिकाई । स्तुति मुनि करहीं आनन्द भरहीं पायन परहीं हर्षाई ॥ ऋषि नारद आये नाम सुनाए सुनि सुख पाये नृप ज्ञानी । सीता अस नामा पूरणकामा सब सुख धामा गुणखानी ॥ सिय सन मुनिराई विनय सुनाई समय सुहाई मृदु वानी । लालन तनु लिजै चरित सुकीजै यह सुख दीजै नृप रानी ॥ सुनि मुनि वर बानी सिय मुसकानी लीला ठानी सुखदाई । सोवत जनु जागी रोवन लागी नृप बड़भागी उर लाई ॥ दम्पति अनुरा-गेउ प्रेम सुपागेउ यह सुख लागेउ मनलाई । स्तुति सिय केरी प्रेम लथेरी वरनि कुचेरी सिर नाई ॥

दो०—निज इच्छा मम भूमि ते प्रकट भई सिय आय।
चरित किये पावन परम बरधन मोद निकाय ॥
जनकपुर जनकनन्दनीजू की जै अयोध्या रामलला की जय।

❋ सायंकाल श्रीराम जी की स्तुति ❋

हे राम पुरुषोत्तम नरहरे नारायण केशव, गोविन्द गरुड़ध्वज गुणानिधे दामोदर माधव। हे कृष्णःकमलापते यदुपते सीतापते श्रीपते, हे वैकुण्ठपते चराचरपते लक्ष्मीपते पाहि माम् ॥ १ ॥ हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते, हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव। हे रामानुज ❋ हे जगत् त्रय गुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां, हे गोपीजन नाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ॥ २ ॥ कस्तूरीतिलक ललाटपटले वक्षस्थले कौस्तुभं नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुक् करे कङ्कणम्। सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलीम्, गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणिः ॥ ३ ॥ आदौ राम तपो वनादि गमनं हत्वा मृगं काञ्चनं, वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्। वालीनिर्दलनं समुद्रतरण लङ्कापुरीदाहन, पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननञ्चैतद्धि रामायणम् ॥ ४ ॥ आदौ देवकिदेवगर्भजननम् गोपीगृहे बर्द्धनं, मायापूतनजीवतापहरणं गोबर्द्धनोधारणम्। कंसच्छेदन कौरवादिहननं कुन्तीसुतान्पालनं एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥ ५ ॥ श्रीरङ्गङ्करिशैलमञ्जनगिरौ शेषाद्रिसिंहाचलम्, श्रीकूर्मम्पुरुषोत्तमञ्च वदरिनारायणं नैमिषम्। श्रीमद् द्वारवतीप्रयागमथुराऽयोध्यागयापुष्करम्, शालग्रामनिवासिनो विजयते रामानन्दोऽयं मुनिः ॥६ विष्णोः पादमवन्तिकां गुणवतीं मध्ये च काञ्चीपुरीं, नाभौ द्वारवतीं तथा च हृदये मायापुरीं पुण्यदाम्। ग्रीवामूलमुदाहरन्ति मथुरां नासाग्रवाराणसीं एतद् ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयो ऽयोध्यापुरी मस्तके। ॥ ७ ॥ तूणेनैकशरःकरेण दशधा सन्धानकाले शतम् चापेऽभूत् सहस्रलक्षगमने कोटिश्च कोटिर्वधे। अन्ते चार्वनिखर्वबाणनिकरैः सीतापते शोभितम्, एतद् बाणपराक्रमस्य महिमा शत्पात्र दानंयथा ॥ ८ ॥ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं, व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतं अद्वैतामृतवर्षिणीम्भगवतीमष्टादशाध्यायिनी, मम्ब त्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भव द्वेषणीम् ॥ ९ ॥ ❋ नमोऽस्तु ते व्यासविशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र, येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितोज्ञानमयः प्रदीपः ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रकृपालु भजुमन, हरण भव भय दारुणम्। नवकञ्ज लोचन कञ्जमुख, करकञ्ज पदकञ्जारुणम् ॥ कन्दर्प अगणित अमित छबि नव नील नीरद सुन्दरम्। पट पीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि

❋ सूचना—यहाँ रामानुज का अर्थ—बलराम के अनुज श्री कृष्ण जी है।

जनक सुता वरम् ॥ शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अङ्ग विभूषणम् । आजानु भुज शर चापधर संग्रामजित खरदूषणम् ॥ भजु दीनबन्धु दिनेश दानव दलन दुष्ट निकन्दनम् । रघुनन्द आनन्द कन्द कोशलचन्द्र दशरथ नन्दनम् ॥ इति वदति तुलसी दास शङ्कर शेष मुनिमन रञ्जनम् । मम हृदय कञ्ज निवास कुरु कामादि खल दल गञ्जनम् ॥

दो०—मों सम दीन न दीनहित, तुम समान रघुवीर ।
अस विचारि रघुवंशमनि, हरहु विषम भवभीर ॥

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम । तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहिं राम ॥ प्रणतपाल रघुवंशमणि, करुणा सिन्धु खरारि । गए शरण प्रभु राखिहैं, सब अपराध विसारि ॥ श्रवण सुयश सुनि आयउँ, प्रभु भञ्जन भव भीर । त्राहि त्राहि आरतिहरण, शरणसुखद रघुवीर ॥ अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान । जन्म जन्म रति राम पद, यह वरदान, न आन ॥ बार बार वर मागऊँ, हर्षि देहु श्री रङ्ग; पद सरोज अन पायनी, भक्ति सदा सत्संग॥ एक मन्द मैं मोह वस, कुटिल हृदय अज्ञान । पुनि प्रभु मोहिं विसारेउ, दीन बन्धु भगवान् ॥ विनती करि मुनि नाय शिर, कह कर जोरि बहोरि । चरण सरोरुह नाथ जनि, कबहुं तजै मति मोरि ॥ नहिं विद्या नहिं बाहु बल, नहिं खर्चन कछु दाम । मोसों पतित पतङ्ग की, तुम पति राखो राम ॥ राम बाम दिशि जानकी, लखन दाहिनी ओर । ध्यान सकल कल्याणमय, सुरतरु तुलसी तोर ॥ नील सरोरुह नील मणि, नील नीर धर श्याम । लाजहिं तनु शोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम ॥ एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध । तुलसी संगत साधु की, हरै कोटि अपराध ॥ सियावर रामचन्द्रजी की जय अयोध्या रामजीलाला की जय वृन्दावन कृष्ण चन्द्र जी की जय इत्यादि ॥

* श्री जानकी जी की सायंकाल की स्तुति *

जय जनकनन्दिनि जगत वन्दिनि जन आनन्दिनि जानकी । रघुवीर नयन चकोर चन्दिनि वल्लभा प्रियप्राणकी ॥ तव कञ्जपद मकरन्द स्वादित योगिजनमन अलिकिये । करि पान गिनत न आन हिय निर्बान छिब आनन्द हिये ॥ सुख खानि मंगल दानि जन जिय जानि शरण जो जात हैं । तव नाथ सब सुख साथ करि तेहि हाथ रीझि बिकात हैं । ब्रह्मादि शिव सनकादि सुरपति आदि निज मुख भाषहीं ॥ तव कृपा नयन कटाक्ष चितवनि दिवस निशि अभिलाषहीं । तनु पाइ तुमहिं बिहाय जड़मति

आन मानस देवहीं । हतभाग सुरतरु त्याग करि अनुराग रेड़हिं सेवहीं ॥ यह आश रघुवर दास की सुख राशि पूरण कीजिए । निज चरण कमल सनेह जनक विदेहजा वर दीजिये ॥

॥ श्री सीताकृपाकटाक्ष स्तोत्र ॥

जै जै सीते स्वामिनी जै अवधेश किशोर । जै जै श्री सर्वेश्वरी चारुशिला रसबोर ॥ सन्धिनि श्री गुरुदेव जी जीव ईश सम्बन्ध । सन्दीपनि उद्दीपकर चारुशिला रसबन्ध ॥ अहलादिनि श्री स्वामिनी प्रीतम स्नेह बढ़ाय । भजन भाव परिपक्व हो इष्ट धाम को जाय ॥ सन्धिनि सन्दीपनि उभय शक्ति स्वामिनी सीय । अहलादिनि अहलादकर प्रीतम से रस पीय ॥ मंगलभाव विवर्द्धनी टीका कृपाकटाक्ष । सिय शौन्दर्य सुधाम में लीला लखै प्रतक्ष ॥ जै जै श्री गुरुदेव जी सन्त शिरोमणि आप । श्री चरणहिं शौन्दर्य सो आशिर्वाद प्रताप ॥

पद—प्रीतम संगे सीते स्वामिनि रवि प्रकाश नहिं छूटै । अणु अणु प्रेरक प्रेयमहा तुम ब्रह्म नाम रस कूटै । अणु आतम ता भीतर रमते राम नाम जिय बूटै ॥ दिव्यधाम साकेत महा सुख पर समाज जल जूटै । रसधारा हिय सन्त जनन को रूपसिन्धु में गूटै ॥ शिव सुक सनक शेष श्रुति सम्मत हनूमान रस लूटै । जिन पायो शौन्दर्य मुनिन को सो समुझै बिन घूटै ॥१॥ प्रीतम राज-किशोर तुम्हारा नाम अमिय रस पाया । श्री गुरुदेव कृपा की मूरति आपहि रूप बनाया ॥ हों परतन्त्र मिटी स्वतन्त्रता सन्धिनि शक्ति सिखया । चारुशिला सब यूथप स्वामिनि युगल भाव अटकाया । भाव देशनित चहूँ यही निधि सन्दीपनि अपनाया ॥ नाम रटत हिय धाम रूप लखि लीला रंग रँगाया । राग रग बहु बढ़ो अह निंशि सुख शौन्दर्य बढ़ाया ॥२॥

मुनीन्द्रवृन्द वन्दिते त्रिलोक शोकहारिणि प्रसन्नवक्त्र पङ्कजेनिकुञ्ज भू विलासिनि॥
वदेहभूपनिन्दिनि नृपेन्द्र सूनुसंगते।कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम्॥१॥

अशोक वृक्ष वल्लरी वितान मण्डप स्थिते । प्रवाल जाल पल्लव प्रभारुणांघ्रि कोमले ॥ वराभय स्फुरत्करे प्रभूत सम्पदालये । कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥२॥ तडित्सुवर्ण चम्पक प्रदीप्त गौरविग्रहे । मुख प्रभापरास्त कोटि शारदेन्दु मण्डले ॥ विचित्र चित्र संचरच्चकोर शाव लोचने । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥३॥ अनंग रंग मंगल प्रसंगभंगुर भ्रुवां । सुविभ्रमं ससंभ्रमद् दृगन्त वाण पातनैः ॥ निरन्तरं वशीकृता वधेशभूपनन्दने । कदाकरिष्य-सीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥४॥ मदोन्मदादियौवने प्रमोद मान मण्डिते । प्रियानुराग रञ्जिते कला विलास पण्डिते ॥ अनन्य धन्य कुञ्जराजि कामकेलि-कोविदे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥५॥ अशेष हावभाव धीर हीर हार भूषिते । प्रभूतशात कुम्भ कुम्भ कुम्भि कुम्भसुस्तति ॥ प्रसस्त मन्द हास्य चूर्ण पूर्ण सौख्य सागरे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥६॥ मृणाल बाल वल्लरी तरङ्ग रङ्ग दोलिते । लताग्र लास्य लोल नील लोचनावलो-कने ॥ ललल्लुलन्मिलन्मनोज मुग्धमोहमा श्रये । कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥७॥ सुवर्ण मल्लिकाश्चिते त्रिरेख कम्बु कण्ठगे । त्रिसूत्र मंगली गुणा-भिरत्न दूर दीप्यते ॥ सलोल नील कुन्तले प्रसून गुच्छ गुम्फिते । कदा करिष्य-सीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥८॥ नितम्ब विम्ब लम्बमान पुष्पमेखला गुणे । प्रशस्त रत्न किंकणी कलाप मध्य मंजुले ॥ करीन्द्र शुण्ड दण्डिका वरोह सौभ-गोरुके । कदाकरिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥९॥ अनेक मन्त्र नाद मञ्जु नूपुरारवस्खले । सुराज राज हंश वंश निक्कणाति गौरके ॥ विलोल हेम वल्लरी विडम्बि चारु चक्रमे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥१०॥ अनन्त कोटि विष्णुलोक नम्र पद्मजार्चिते । हिमाद्रिजा पुलोमजा विरञ्चिजा वरप्रदे । अपार सिद्धि वृद्धि दिग्ध सत्पदांगुली नखे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥११॥ मखेश्वरी क्रियेश्वरी सुधेश्वरी सुरेश्वरी । त्रिवेद भारतीश्वरी प्रणाम शासनेश्वरी ॥ रमेश्वरी क्षमेश्वरी विनोद कामनेश्वरी । प्रमोदकाननेश्वरी विदेहजे

नमोऽस्तु ते ॥१२॥ इतीदं मङ्गुलं स्तवं निशम्य भूमि नन्दिनी । करोति सन्ततं जनं कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥ भवत्यनेक सञ्चित त्रिरूप कर्म नाशनम् । लभेत्तथा नृपेन्द्र सूनु मन्दिर प्रवेशनम् ॥१३॥ राकायां च नवम्यां च दशम्यां ज विशुद्धधीः ॥१४॥ यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः ॥ सीता कृपाकटाक्षेण भक्तिः स्यात्प्रेम लक्षणा ॥१५॥ उरूदध्ने नाभिदध्ने हृदध्ने कण्ठ दध्नके । सीता कुण्डजले स्थित्वा यः पठेत् साधकः शतम् ॥१६॥ तस्य सर्वार्थ सिद्धिः स्यात् वाक्य सामर्थ्य मेव च ॥ ऐश्वर्यश्चमलेत्साक्षा दृशा पश्यति जानकीम् ॥१७ तेन सा तत् क्षणादेव तुष्टा दत्ते महावरम् ॥ येन पश्यति नेत्राभ्यां तत् प्रियं श्यामसुन्दरम् ॥१८॥ नित्यलीला प्रवेशं च ददाति श्री रघूत्तमः ॥२०॥ अतः परतरं प्राप्यं वैष्णवानां न विद्यते ॥१९॥

हे मुनिश्रेष्ठ समूह से वन्दित चरणवाली ? हे तीनों लोकों के शोक को नाश करनेवाली ! हे प्रसन्न मुखकमले हे विलास वनों के विविध कुञ्जों में विहरनेवाली ! हे विदेहराजकन्ये ! हे श्रीचक्रवर्तिकुमार की संगिनी ! आप मेरे को अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ १ ॥ हे अशोकवन के वृक्ष लताओं से बने वितान (चन्दोवा) तथा मण्डपों में बैठनेवाली हे मृगामणि समूह के समान अरुण लाल और नवीन पल्लवों के समान कोमल चरण तालु वाली तथा अभय वरदान देते हुये प्रकासमान करकमले हे महान् ऐश्वर्य भरे हुये श्री कनकभवन वाली मेरे को अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ २ ॥ हे बिजली सम चमक स्वर्ण सम स्थिर प्रकाश चम्पकपुष्प सम कोमल गौर रंग श्रीविग्रह वाली हे करोणों चन्द्रों की प्रभा को तिरस्कार करने वाले श्री मुखचन्द्रवती विचित्र चित्र सारियों में विचरण करते हुये अपने प्रीतम मुखचन्द्र की हे चकोर कुमारीवत नेत्रवाली श्रीसीता जी आप मुझे अपने कृपाकटाक्ष का पात्र इन विलास स्थानों में कब बनाओगी ॥३॥ प्रमोदवन के रंगविलास में मंगल प्रसंग की वृद्धि के लिये अपनी वक्र भृकुटी से सम्भ्रम सा पैदा करती हुई दृग कटाक्ष बाणों के प्रहार से श्री अवधेशनन्दन को सुन्दर भ्रमित करके निरन्तर के लिये अपने वश में करने वाली हे सीते आप मुझे अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ४ ॥ श्री प्रीतम के अनुराग में रंगी हुई विलासको कलाओंमें पण्डिता प्रमदासमूह में मानिनी आदि युवावस्था उन्माद के मद से भूपिता स्वतन्त्र

कुञ्ज समूहों में अनन्त ऐश्वर्यमय मनमाना केलि कला मर्मज्ञा हे सीते इस स्थान में मुझे अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ५ ॥ हे स्वर्णोत्पन्न सुष्ठु कलसवत मधुर वक्षस्थले हे हीरादिमणि हारभूषिते पूर्ण आनन्द समुद्र में प्रीतम के अनपत्र निवृत्यर्थ प्रशंसनीय मन्दहास्य रूप चूर्ण देकर बड़ी धीरता पूर्वक कायिक मानसिक सम्पूर्ण चेष्टाओं से प्रसन्न रखनेवाली इस स्थान में मुझे अपना कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ६ ॥ मनोज मुग्ध लालजी मिलने को लालायित हैं हे सीते आप कोमल कमलनाल सदृश भुजलताओं से आनन्द समुद्र के रासरंग तरंग में झूलते हुये लताओं के अग्रभाग सदृश चंचल होकर नीलकमल सदृश अंजन अंजित नेत्रों से अवलोकन (इसारा) करके मोह में डाल रही हैं तो भी आपही का आश्रय ले रहे हैं ऐसी हे स्वामिनीजू इस स्थान में मेरे को अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ७ ॥ शंख सदृश तीनरेखा युक्त कण्ठ में स्वर्णमाला तथा तिलरी और मंगलसूत्र (दो लर की नीलमणि की गलपोती) और भी रत्न हार जो दूर से ही चमक रहे हैं । इसी प्रकार पुष्प गुच्छ गुम्फित नील घुंघराले चंचल अलकावली से शोभिता हे सीते ! मुझे अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ८ ॥ कमर में फूलों की करधनी से फूलों के गुच्छे लम्बे झूल रहे हैं उसी में रत्नों के प्रशंसनीय किंकिणियां मनोहर शब्द कर रही हैं तथा गजराज के सूंड़ दण्ड की तरह से सुन्दर उतार चढ़ाववाले आपके ऊरू महासौभाग्य को सूचित कर रहे हैं हे सीते! मेरे को अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ९ ॥ हे स्वामिनीजी आपके सञ्चरण से नूपुरों की आवाज में अनेक दिव्यमन्त्रों का उच्चारण हो रहा है जिनका शब्द निष्काण को ध्यान लगाकर सूर्य वंशावतंश राजराजेश्वर श्री राम जी बड़े गौर से सुनते हैं और आपको देखकर सुन्दरता में विभोर होकर क्या यह स्वर्णलता है अथवा क्या है ऐसे चकाचौंधी में चंचल हो जाते हैं इस जगह आप मुझे अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ १० ॥ अनन्त विष्णुलोकोंकी कमलायें बड़ी नम्रता पूर्वक आपके श्रीचरणों की पूजा करती हैं और पार्वती इन्द्राणी सरस्वती इन सबने आपकी सेवा में रहकर विविध वरदान पाये हैं आपके सुन्दर श्रीचरणकी अंगुली के प्रत्येक नखों में अपार सिद्धिया हैं जो कि सेवकों को देते २ भी बढ़ते जाते हैं अतः हे सीते इन चरणों में मुझे भी अपनी कृपाकटाक्ष का पात्र कब बनाओगी ॥ ११ ॥ हे श्री विदेहराज कन्यके आप सर्वयज्ञेश्वरी तथा सर्व क्रियाओं की ईश्वरी सर्वविधि

अमृतों की ईश्वरी हैं सर्वदेवों की ईश्वरी तीनों वेदों की ईश्वरी तथा सर्वविध वाणियों की ईश्वरी प्रमाणिक शास्त्रों की ईश्वरी समस्त शासनों की ईश्वरी अनन्त-रमाओं की ईश्वरी महाक्षमा की ईश्वरी तथा प्रमोदवन अशोकवनादि की स्वामिनी हैं आपको मेरी प्रपत्ति स्वीकार हो ॥ १२ ॥ इस प्रकार श्री भूमि नन्दिनी श्रीसीताजी इस अद्भुत स्तव को सुनेंगी तो अपने आश्रित को सदा केलिये अपना कृपाकटाक्ष का पात्र बना लेवेंगी इस अवस्था में यह जीवात्मा अपने तन वचन मनसे किये सञ्चित क्रियमाण प्रारब्ध रूप कर्मों का नाश होकर फिर श्री चक्रवर्तीकुमार श्रीसीता-रामजीके श्रीमहलमें प्रवेश पा जाएगा ॥ १३ ॥ सुन्दर बुद्धि का साधक इस स्तव को पूर्णमासी नवमी दशमी एकादशी त्रयोदशी इन तिथियों में पवित्र विचार से यदि पढ़ेगा तो ॥ १४ ॥ साधक को जो जो मन में कामना होगी श्री सीता जी की कृपा दृष्टि से सब पूरी होगी तथा शुद्धानुरागमय भक्ति भी होगी ॥ १५ ॥ दध् धातु ग्रहण या अधिकार—अर्थ में होने से अर्थ होगा कि श्री सीताकुण्ड के जंघा भर जल में या नाभी भर या हृदय तक या कण्ठ भर जल में बूड़ कर जो साधक इस स्तव का पाठ सौबार करेगा तो ॥ १६ ॥ उस साधक के सब मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे तथा दिव्यवाणी खुल जायगी और सभी ऐश्वर्य प्राप्त कर लेगा नेत्रों से साक्षात् श्री जानकी जी का दर्शन मिल जायगा ॥ १७ ॥ पूर्वोक्त स्तुति द्वारा शीघ्र ही महाप्रसन्न होकर वरदान देती हैं जिससे उनके पतिदेव श्री रामचन्द्र जी के श्याम सुन्दर श्री विग्रह का प्रत्यक्ष दर्शन होगा ॥ १८ ॥ तथा श्री रघुत्तम जी अपने नित्य लीलास्थान श्री साकेत में प्रवेश करा लेवेंगे इससे अतिरिक्त श्रीवैष्णवों को कुछ नहीं माँगना चाहिये ॥ २० ॥

श्री भरताग्रजाष्टकम्

हे जानकीश वरसायकचापधारिन्; हे विश्वनाथ रघुनायक देव देव । हे राजराज जनपालक धर्मपाल. त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ॥१॥ हे सर्वचित् सकलशक्तिनिधे दयाब्धेहे; सर्वजित् हे परशुरामनुतप्रवीर । हे पूर्णचन्द्रविमलानन, वारिजाक्ष, त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ॥२॥ हे रामबद्ध वरुणालय हे खरारे; हे रावणान्तक विभीषणकल्प वृक्ष । हे पन्नजेन्द्र शिववन्दितपादपद्म, त्राय स्वनाथ भरताग्रज दीनबन्धो ।३। हे दोषशून्य सुगुणार्णव दिव्यदेहिन; हे सर्वकृत्

सकलर्षिपदर्शितविशिष्ट । हे सर्वलोक परिपालक सर्वमूल; त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ।४। हे सर्वसेव्य सकलाश्रय शीलसिन्धो, हे मुक्तिद प्रपदनात् भजनान्यथा च । हे पापहृत पतितपावन राघवेन्द्र; त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीनबन्धो ।५। हे भक्तवत्सल सुखप्रद शान्तमूर्ते, हे सर्वकर्मफलदायक सर्वपूज्य । हे न्यून कर्मपरिपूरक वेद वेद्य, त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ।६। हे जानकीरमण हे सकलान्तरात्मन, हे योगिवृन्दरमणास्पदपादपद्म । हे कुम्भजादिमुनिपूजित हे परेश; त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीन बन्धो ।७। हे वायुपुत्र परितोषित ताप–हारिन, हे भक्तिलभ्य वरदायक सत्यसन्ध । हे रामचन्द्र सनकादिमुनीन्द्रवन्द्य, त्रायस्वनाथ भरताग्रज दीनबन्धो ।८। श्रीमच्छंकरदासेन मुनिराजेन निर्मितम् । अष्टकं भवतादेतत् पठतां श्रेयसे सताम् ।।९।।

अब पाठकगण जगतगुरु श्रीस्वामी आदि श्री शंकराचार्य जी महाराजकृत चर्पट मंजरी द्वारा सदुपदेश ग्रहण करें ।।

❀ चर्पटमञ्जरी ❀

—: भाषाटीकया सहिता :—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति 'डुकृञ् करणे' ।१। दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः । कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ।२। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्ता–वत्तरुणीरक्तः । वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ।३। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् । वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।४। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते । पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् । इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ।५। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ? पुनरपि रजनी

पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः । पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं, तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ॥५क॥ भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ?
जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः । पश्यन्नपि न च पश्यति मूढः उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥६॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते
वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः । क्षीणे वित्ते कः परिवारः ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥७॥ भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्द भज मूढमते ?
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः । करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ॥८॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते !
यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारे रक्तः । पश्चाज्जर्जरभूते देहे वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥९॥ भज गोविन्द भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते !
रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः । न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥१०॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !
नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्या मायामोहावेशम् । एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् ॥११॥ भज गोविन्द भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !
गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् । नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥१२॥ भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते !
भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता । येनाकारि मुरारेरर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम् ।१३। भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !
कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः को मे जननी को मे तातः । इति परिभावय सर्वमसारं सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।१४। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्द भज मूढमते ! का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः । कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय मनसि भ्रातः ।१४। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ! सुरतटिनीतरुमूलनिवासः शय्याभूतलमजिनं वासः । सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ।१६। भज गोविन्दं भज गोविन्दं

गोविन्दं भज मूढमते ! सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त! शरीरे रोगः । यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चतिपापाचरणम् ।१७। भज गोविन्दं भज गोविन्द भज मूढमते ! कुरुते गंगा सागर गमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् । ज्ञानविहीने सर्वमतेन, मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ॥१८॥ भज गोविन्दं भज गोविन्द गोविन्दं भज मूढमते !

गुरुजन उपदेश करते हैं कि जड़मते ! इस मिथ्या आशा को छोड़कर गोविन्द का भजन कर । यदि तू गोविन्द का भजन नहीं करता है तो मृत्यु समीप आने पर 'डुकृञ् करणे' आदि वाक्य तेरी रक्षा न कर सकेंगे ॥ १ ॥ भगवती प्रकृतिदेवी की लीलाभूमि इस संसार में दिन होता है, रात्रि होती है, प्रातः और सायं समय भी होते हैं, शिशिर और वसन्त आदि ऋतुएँ भी आती रहती हैं इस प्रकार काल अपनी गति में चलता हुआ खेल कर रहा है और साथ ही हमारी आयु भी घटती जा रही है तिस पर भी हम लोग आशारूपी वायु के चक्कर में पड़कर इधर-उधर भटकते फिरते हैं । वह आशारूपी वायु हमारा पीछा नहीं छोड़ती है अतः हे मूढ़ ! गोविन्द का भजन कर ॥ २ ॥ जब तक तू बालक था तब तक खेलने में ही लगा था । जब तक तू तरुण (जवान) था तब तक तो नवयुवतियों में ही मन लगाकर समय गँवाया । उसके बाद जब बुढ़ापा ने आ घेरा तो सदा चिन्ता में ही डूबा रहा । कभी एक क्षण भी परब्रह्म में चित्त नहीं लगाया । अतः हे अज्ञानी ! अब तो गोविन्द का भजन कर ॥ ३ ॥ शरीर के सब अङ्ग गल गये हैं; शिर के बाल केवल पके ही नहीं हैं, शिर गंजा हो गया है, शिर के बाल गिर गये हैं । मुख में एक भी दाँत नहीं है, बुढ़ापा आ गया है । छड़ी के सहारे चलता है । तिस पर भी यह बृद्ध आशा का पिण्ड नहीं छोड़ता है । अरे मूर्ख ! तू आशा को छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ४ ॥ बार-बार जन्म हुआ और बार-बार मरण हुआ, बार-बार माता के गर्भ में शयन करना पड़ा किन्तु इस दुस्तर (कठिनाई से पार किये जाने वाले) संसार में आकर कभी यह भी नहीं कहा कि 'हे मुरारे ! इस जन्म-मरण के दुःख से मेरी रक्षा करो ।' अतः हे मूढ़ ! अब गोविन्द का भजन कर ॥ ५ ॥ लगातार दिन, रात, पक्ष, मास, अयन और वर्ष व्यर्थ बीतते जा रहे हैं तथापि आशा और द्वेष नहीं छूटते हैं । हे मूर्ख ! इस माया-जाल को छोड़कर तू गोविन्द का भजन कर ॥ ५क ॥ शिर पर जटा बढ़ायी मूड़ मुड़ाया, बालों को नोच डाला गेरुआ

रंगका वस्त्र धारण किया, औरभी अनेक प्रकारकाभेष बनाया, देखताहुआ भी संसार कोनहीं देखताहै, केवल पेट भरनेके लिए बहुतरूप बनाया ।हेमूर्ख ! यहसब नहीं प्रपञ्च छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ६ ॥ अवस्था बीत जाने पर अर्थात् वृद्धावस्था आने पर काम-विकार ही क्या ? अर्थात् व्यर्थ ही है । पानी सूख जाने पर तालाब, पोखरा आदि का क्या महत्व ? कुछ भी नहीं । जब पास में धन नहीं है तो परिवार कौन ? कोई नहीं । पास में धन रहे तो सभी घेरे रहते हैं । इसी तरह तत्त्व-ज्ञान हो जाने पर संसार क्या ? कुछ भी नहीं । अज्ञान ही संसार की जड़ है । अतः हे मन्दमते ! ज्ञान प्राप्त करने के लिए तू गोविन्द का भजन कर ॥ ७ ॥ जाड़े के दिनों में प्रातःकाल ठंड दूर करने के लिए सामने आग रखी है और पीठ पर सूर्य की किरणें गर्मी पहुंचा रही हैं । रात्रि में जाड़े के मारे घुटनों के बीच में ठुडढो दबाकर बैठे हैं । हाथ पर भीख माँगकर खाते हैं, पास पात्र नहीं है, पेड़ के नीचे निवास करते हैं, घर नहीं है । ऐसी दशा होने पर भी आशारूपी पाश (बन्धन) को नहीं छोड़ते हैं । अतः हे अज्ञानी ! तू आशापाश को छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ८ ॥ जब तक धन कमाने की शक्ति रही तब तक परिवार के लोग भी बात पूछते हैं, धन कमानेवाला मनुष्य अपने परिवार में ही फँसा रहता है । वृद्धावस्था आने पर शरीर जर्जर (शिथिल और दुर्बल) हो जाने पर धन कमाने योग्य न रहने पर, घर में कोई बात भी नहीं पूछता है । अतः हे मूढ़ ! यह सब माया-प्रपञ्च छोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ ९ ॥ गली के चीथड़ों की कथरी बनी है, पुण्य और पाप के विचार से रहित मार्ग है, न मैं हूँ, न तुम हो और न यह संसार है, तो क्यों शोक करते हो, चिन्ता करते हो । शोक को छोड़कर तू गोविन्द का भजन कर ॥ १० । कामिनियों के उन्नत कुचों और नाभि को तथा मायामय वेश को देखकर लालची मत बनो किन्तु मन में बारंबार ऐसा विचार करो कि यह सब मांस और चर्बी का विकार हैं । यह सब भ्रम को छोड़कर तू गोविन्द का भजन कर ॥ ११ ॥ गीता और सहस्रनाम गाने योग्य हैं, पाठ करने योग्य हैं श्रीपति भगवान् विष्णु का रूप ही ध्यान करने योग्य है, सज्जन लोगों की सङ्गति में ही मन लगाना चाहिए और दीन (गरीब) लोगों को ही धन देना चाहिये । मूर्ख तू गोविन्द का भजन कर ॥ १२ ॥ जिस किसी ने थोड़ी-सी गीता पढ़ी हो, और गङ्गाजल का एक कण [बूँद] भी पिया हो और एक बार भी भगवान् की पूजा की हो तो यमराज उसकी चर्चा नहीं करते हैं । अतः हे मूर्ख ! तू गोविन्द का भजन कर ॥ १३ ॥ तुम कौन हो, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, कौन मेरी माता है और कौन पिता है ? इन सब झूठे विचारों को तथा संसार को

असार (व्यर्थ) और स्वप्न समझकर उसका त्याग करो, और गोविन्द का भजन करो, गोविन्द का भजन करो ॥ १४ ॥ तुम्हारी प्रिय पत्नी कौन है ? तुम्हारा पुत्र कौन है ? यह संसार बहुत ही विचित्र, विलक्षण है । किसका तू है ? कहाँ से आया है ? हे भाई ! मन में तो इन सब प्रश्नों का विचार कर तत्त्व का विचार कर । इन सब का उत्तर पाने के लिए तू गोविन्द का भजन कर ॥ १५ ॥ गङ्गाजी के तट पर वृक्षों के नीचे निवास, भूमि ही शय्या, मृगछाला ही वस्त्र, सब प्रकार के परिग्रह [संग्रह] और भोग-विलास का त्याग ऐसा वैराग्य किसको सुख नहीं देता अर्थात सबको सुख देता है । हे मूर्ख ! तू गोविन्द का भजन कर ॥ १६ ॥ सुख की इच्छा से स्त्री के साथ भोग किया जाता है किन्तु अन्त में शरीर रोगी हो जाता है । यह खेद है । लोग यह जानते हैं कि इस संसार में आकर मरना निश्चित है फिर भी पाप करना नहीं छोड़ते हैं ! अतः हे विषयी जीव तू पाप से मुख मोड़कर गोविन्द का भजन कर ॥ १७ ॥ चाहे गंगा; सागर आदि तीर्थों की यात्रा करो, अनेक व्रतों का पालन करो, अथवा दान करो किन्तु ज्ञान न होने से सौ जन्म में भी मुक्ति नहीं हो सकती । अतएव हे जड़मति ! तू माया के सब प्रपञ्चों को त्यागकर गोविन्द का भजन कर जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ १८ ॥

ज० गु० स्वामी श्री शंकराचार्य रचित प्रश्नोत्तरी के प्रश्न और उत्तरों को पाठक समझने का प्रयास करेंगे, तो यह लघु पुस्तिका द्वारा ही मोह को त्यागकर भगवत्कृपा के अधिकारी बन सकते हैं ॥

❀ प्रश्नोत्तरी ❀

अपारसंसारसमुद्रमध्ये सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति । गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ।१। बद्धो हि को यो विषयानुरागी का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः । को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति ।२। संसार हृत्कः श्रुति जात्मबोधः को मोक्षहेतुः कथितः स एव । द्वारं किमेकं नरकस्य नारी का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ।३। शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो जागर्ति को वा सदसद्विवेकी । के शत्रवः सन्ति जितेन्द्रियाणि तान्येव मित्राणि जितानि यानि ।४। को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः । जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः किं वामृतं स्यात्सुखदा

निराशा ॥५॥ पाशो हि को यो ममताभिमानः सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री । को वा महान्धो मदनातुरो यो मृत्युश्च को वापयशः स्वकीयम् ॥६॥ को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव । को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव ॥७॥ किं भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम् । किमत्रहेयं कनकं च कान्ता श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम् ॥ ८ ॥

* प्रश्नोत्तरी *

शिष्य ने पूछा कि—हे दयामय श्री गुरुदेव जी ! आप हमें कृपा करके यह बतालाइये कि—अपार संसारसागर में मुझ डूबते हुये का आश्रय क्या है ? तब पूज्य स्वामी जी ने कहा कि—विश्वात्मा जगतपति भगवान् श्रीहरि के श्रीचरणकमल रूपी सुदृढ़ एवं विश्रित नौका (जहाज) का आश्रयण करता व्यक्ति सरलता पूर्वक संसारसागर से पार हो सकता है ॥ १ ॥ प्र०—वास्तव में बँधा कौन हैं । उ०—विषयों में आशक्त जीव । प्र०—विमुक्त क्या हैं । उ०—सभी विषयों पूर्णतया वैराग्य हो जाना । प्र०—घोर नरक क्या है । उ०— अपना शरीर । प्र०—स्वर्ग का पद क्या है । उ०—तृष्णा का नाश होना ॥ २ ॥ प्र०—संसार को हरनेवाला कौन है । उ०—वेद से उत्पन्न आत्म और परमात्मज्ञान । प्र०—मोक्षका कारण क्या कहा गया है । उ०—आत्मा तथा परमात्मा का दिव्य ज्ञान । प्र०—नरक का प्रधान द्वार क्या है । उ०—स्त्री में आशक्ति । प्र०—स्वर्ग को देनेवाली वृत्ति क्या है । उ०—जीवमात्र की अहिंसा ॥ ३ ॥ प्र०—सुख से कौन सोता है । उ०—जो भगवद्भजन परायण होकर भगवद्रूप में तन्मय रहता है । प्र —जागता कौन है । उ०—सत् रूप भगवान् श्री हरि को जानकर उनकी भक्ति परायण और असत् रूप मायाकृत अज्ञान भ्रम मोह एवं विषयों से वैराग्यवान । प्र०—शत्रु कौन है । उ०- विषयाशक्त अपनी इन्द्रियाँ किन्तु यदि संयम द्वारा उनको वश में करले तो वही परममित्र भी है ॥ ४ ॥ प्र०-दरिद्र कौन है । उ०—भारी तृष्णा । प्र०-धनवान् कौन है । उ०-जो सर्वदा सबप्रकार सन्तुष्ट रहता है । प्र०—जीते जी मरा कौन है । उ०—जो पुरुषार्थ हीन है । प्र०—अमृत क्या हो सकता है । उ०—संसार के सभी प्राणियों से निराश होकर भगवान् श्री हरि की आशा रखना ॥ ५ ॥ प्र०—फाँसी क्या है । उ०—मैं और मेरे पन की आशक्ति । प्र०—क्या वस्तु मदिरा की भाँति मोहित कर देती है । उ०—स्त्री का

सौन्दर्य और उसमें भोग्यत्व बुद्धिपूर्वक प्रियता । प्र०-सबसे बड़ा अन्धा कौन है । उ०-काम व्यथा व्यथित व्यक्ति । प्र०-मृत्यु क्या है । उ०-अपनी अपकीर्ति ॥ ६ ॥ प्र०-गुरु कौन है । उ०-जो परम हितकारी आत्मा और परमात्मा का दिव्य ज्ञान प्रदान करे । अपने सदुपदेश द्वारा शिष्य का मोह अज्ञान भ्रम दूर करके भगवत्पा-दारविन्दकीभक्ति करनेकी प्रेरणादे । प्र०शिष्यकौनहै उ०जो श्रद्धाभक्ति भावनापूर्वक गुरुके सदुपदेश का पालन करते हुये भगवत्भजन परायण होकर गुरु का सत्कार करे । प्र०-सबसे बड़ा रोग क्या है । उ०-बार बार जन्म लेना और मरना । प्र०-इस जन्म मृत्यु रूपी रोग से मुक्त होने की औषधि (दवा) क्या है । उ०-भगवत्तत्व का मनन करना ही ॥ ७ ॥ सब भूषणों में सबसे उत्तम भूषण क्या है । उ०-उत्तम चरित्रवान होना । प्र०-सबसे उत्तम तीर्थ क्या है । उ०-विशेष रूप से शुद्ध किया हुआ अपना मन जो भगवद्भजन प्रिय हो । प्र०-इस संसार में त्यागने योग्य क्या है । उ०-सम्पत्ति, लोकप्रतिष्ठा स्त्री में भोग्यत्व बुद्धि पूर्वक आशक्ति । प्र०-मन लगाकर ध्यान से सर्वदा सुनने योग्य क्या है । उ०-वेद शास्त्रादि एवं गुरुजनों के अमृतमय सदुपदेश ॥ ८ ॥

के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति सत्सङ्गतिर्दानविचारतोषाः । के सन्ति सन्तोऽखिल-वीतरागा अपास्तमोहाः शिवतत्त्वनिष्ठाः ॥९॥ को वा ज्वरःप्राणभृतां हि चिन्ता मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः । कार्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः किं जीवनं दोषविवर्जितं यत् ॥१०॥ विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या बोधो हि को यस्तु विमुक्तिहेतुः । को लाभ आत्मावगमो हि यो वै जितं जगत्केन मनो हि येन ॥११॥ शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा मनोजबाणैर्व्यथितो न यस्तु । प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्त को वा प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥१२॥ विषद्विषं किं विषयाः समस्ता दुःखी सदा को विषयानुरागी । धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः ॥१३॥ सर्वास्ववस्थास्वपि किन्न कार्यं किं वा विधेयं विदुषां प्रयत्नात् । स्नेहं च पापं पठनं च धर्मं संसारमूले हि किमस्ति चिन्ता ॥१४॥ विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः । का शृङ्खला प्राणभृतां हि नारी दिव्यंव्रतिकिं च समस्तदैन्यम्॥१५॥ज्ञातुं न सक्यं

न किमस्ति सर्वेर्योपिन्मनो यच्चरितं तदीयम् । का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा ॥१६॥

प्र०-परमात्मा की प्राप्ति के क्या साधन हैं । उ०-सत्संग, सात्त्विकदान, सन्तोष एवं भगवत्तत्त्व का मनन करना । प्र०—महात्मा कौन है । उ०-समस्त संसार से जिनकी आशक्ति नष्ट हो गई है । और सततकाल भगवान् श्री हरि के नाम, रूप लीला धाम की उपासना में दत्तचित्त से लगे रहते हैं । एवं प्राणिमात्र के कल्याण की भावना करते हैं । जिनका अज्ञान नष्ट हो चुका है । और जो परम मंगलमय कल्याणस्वरूप भगवत्तत्व में स्थित (तन्मय) हैं ॥ ९ ॥ प्र०-प्राणियों केलिये वास्तव में ज्वर क्या है । उ०-चिन्तामग्न रहना । प्र०-मूर्ख कौन है । उ०-जो विचारहीन है चाहे अशिक्षित हो या शिक्षितहो। प्र०-करने योग्य प्रिय क्रिया क्या है ? उ० भक्त और भगवान् की भक्ति । प्र०-वास्तव में जीवन कौन सा है । उ० जो सर्वथा निर्दोष है ॥ १० ॥ प्र०-वास्तविक विद्या कौन सी है । उ०-जिसके द्वारा भगवत्प्राप्ति हो जाये । यदि कई विद्याओं का ज्ञाता भी भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो रहा है । तो उसकी समस्त विद्यायें निरर्थक जैसी ही हैं । प्र०— वास्तविक ज्ञान क्या है । उ०-जो यथार्थ रूप से आत्मा परमात्मा को लक्ष्य कराकर मुक्ति स्वरूप भगवत्प्राप्ति करादे । प्र०-यथार्थ लाभ क्या है । उ -भगवत्प्राप्ति । प्र०-जगत को किसने जीता है ? उ०-जिसने अपने मन को जीत लिया ॥ ११ ॥ प्र०-शूरवीरों में सबसे अधिक शूर वीर कौन है ? उ०-जो परमसौन्दर्यवती नवयुवती को देखकर भी कामवाणों से पीड़ित नहीं होता है । प्र०-बुद्धिमान् समदर्शी और धीर पुरुष कौन है । उ०-जो प्रमदाओं के कटाक्षों के द्वारा मोहित न हो ॥ १२ ॥ विष से भी भारी विष क्या है । उ०-सभी विषय भोग । प्र०-सदा दुखी कौन है । जो अनित्य भोगों में आशक्त है । प्र०-धन्यवाद का पात्र कौन है । उ०-जो जीवमात्र का उपकार करता है । प्र०-पूज्यनीय कौन है । उ०-कल्याण स्वरूप भगवान् श्री हरि में तन्मयता प्राप्त महात्माजन ॥ १३ ॥ प्र०-सभी अवस्थाओं में विद्वानों को क्या नहीं करना चाहिये । उ० संसारी वस्तु व्यक्ति परिस्थिति में आशक्ति अन्याय एवं पाप । प्र०-करना क्या चाहिये । उ०-वेद शास्त्रादि श्रीरामायण गीता भागवत इत्यादि सद्ग्रन्थों का पठन पाठन तथा धर्म का पालन । प्र०-संसार का मूल क्या है । उ०-उसका बार बार चिन्तन करना ही ॥ १४ ॥ प्र०-ज्ञानियों में श्रेष्ठ ज्ञानी कौन है । उ०-जो स्त्री रूप पिशाचिनी से ठगा नहीं गयाहै । प्र०-प्राणियों के लिये साँकल क्या है । उ०-नारी ।

प्र०-श्रेष्ठ व्रत क्या है । उ -विनम्रता पूर्वक दैन्यतानुसंधान करना ॥ १५ ॥ प्र०-क्या जानना सभी के लिये सम्भव नहीं है । उ०-स्त्री का मन और उसका चरित्र। प्र०-क्या त्यागना सभी के लिये अत्यन्त कठिन है । उ०-अनुचित वासनायें (विषय भोग और पाप की इच्छायें) प्र०-पशु कौन है । उ०-जो सद्विद्या से रहित [मूर्ख] है, यहाँ पर मूर्ख कहने का आसय है विचार विहीन पशुवत आचरण करनेवाला। कई विद्याओं को पढ़ने पर भी उचित अनुचित का बिना विचार किये कार्य करता भो पशु समान ही है ॥ १६ ॥

वासो न सङ्गः सह कैर्विधेयो मूर्खैश्च नीचैश्च खलैश्च पापैः । मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं सत्सङ्गतिर्निर्ममतेशभक्तिः ॥१७॥ लघुत्वमूलं च किमर्थितैव गुरुत्वमूलं यदयाचनं च । जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥१८॥ मूकोऽस्ति को वा बधिरश्च को वा वक्तुं न युक्तं समये समर्थः । तथ्यं सुपथ्यं न शृणोति वाक्यं विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी ॥१९॥ तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति । त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेव सम्यग्देयं परं किं त्वभयं सदैव ॥२०॥ शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्ति को वा कामः सकोपानृतलोभतृष्णः । न पूर्यते को विषयैः स एव किं दुःखमूलं ममताभिधानम् ॥२१॥ किं मण्डनं साक्षरता मुखस्य सत्यं च किं भूतहितं सदैव। किं कर्म कृत्वा न हि शोचनीयं कामारिकंसारिसमर्चनाख्यम् ॥२२॥ कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्षः क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ। शल्यं परं किं निजमूर्खतैव के के ह्युपास्या गुरुदेववृद्धाः ॥२३॥ उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात् । वाक्कायचित्तैः सुखदं यमघ्नं मुरारिपादाम्बुजचिन्तनं च ॥२४॥

प्र०-किन किन के साथ निवास और संग नहीं करना चाहिये । उ०-मूर्ख नीच, दुष्ट और पापियों का न तो विशेष संग करना चाहिये; न उनके साथ निवास करना चाहिये । अन्यथा उनके दोष दुर्गुण अपने में भी आजायेंगे । प्र०-मुक्ति चाहनेवालों को तुरन्त क्या करना चाहिये । उ०-सत्संग, ममता का त्याग और भगवद्भक्ति करनी चाहिये ॥ १७ ॥ प्र०-छोटेपन की जड़ क्या है । उ०-माँगना ही । प्र०-बड़े होने की जड़ क्या है । उ०-किसी से कुछ न माँगना । प्र०-किसका जन्म प्रसंशनीय । उ०-

जिसका पुनः जन्म न हो। प्र०-किसकी मृत्यु प्रसंशनीय है। उ०-जिसकी फिर कभी मृत्यु नहीं होती, अर्थात् जन्म मरण से मुक्त हो जाने वाले की। भगवद्भक्ति करने वाले का ही जन्म और मृत्यु दोनों ही प्रशंसनीय हैं भगवद्विमुखों का जन्म और मृत्यु दोनों ही निन्दनीय है ॥ १८ ॥ प्र०-गूँगा कौन है। उ०-जो समयपर उचित बात नहीं कह पाता है। प्र०-बहिरा कौन है। उ०-जो व्यक्ति यथार्थ और हितकर वचन नहीं सुनता है। प्र०-विश्वास के योग्य कौन नहीं है। उ०—नारी ॥ १९ ॥ प्र०—प्रधान तत्त्व क्या है। उ०-भगवान् श्री हरि ही परमतत्त्व हैं। जेहि समान अतिसय नहिं कोई। न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते। अर्थात् कोई जिसके समान या अधिक नहीं है। वह परमात्मा परमतत्त्व है। प्र०-सबसे उत्तम क्या है। उ०-उत्तम और पवित्र आचरण। प्र०-कौनसा सुख तज देनाचाहिये। उ०-स्त्रीमें भोग्यत्वबुद्धि एवं उसका अंग संग। प्र०-देने योग्य उत्तम दान क्या है। उ०-सभी को सर्वदा अभय कर देना ॥ २० ॥ प्र०-शत्रुओं में बड़ा शत्रु कौन है। उ०-क्रोध झूठ, लोभ, और तृष्णा सहित काम। प्र०-विषयों से कौन तृप्त नहीं होता। उ० काम की वासना। प्र०-दुःख की जड़ क्या है। उ०-वस्तु व्यक्ति में आसक्ति होना ॥ २१ ॥ प्र०-मुख का भूषण क्या है। उ०-विद्वत्तापूर्ण प्रिय एवं हितकर वचन। प्र०-सच्चा कर्म क्या है। उ०-सर्वदा प्राणिमात्र का हित करना। प्र० कौन सा कर्म करके पछताना नहीं पड़ता। उ०-भक्त और भगवान् का पूजन अर्थात् भक्तवर श्री शंकर जी एवं भगवान् श्री कृष्ण जी का पूजन ॥ २२ ॥ प्र०-किसके नाश होने में मोक्ष होता है। उ०-मन की चंचलता के। प्र०-किसमें सर्वथा भय नहीं है। उ०-भगवत्प्राप्ति मोक्ष में। प्र०-सबसे अधिक चुभनेवाली वस्तु क्या है। उ०-अपनी ही मूर्खता। प्र०-उपासना के योग्य कौन हैं। उ०-वृद्ध, गुरु एव देवादिदेव भगवान् श्री हरि और भगवद्भक्ति ॥ २३ ॥ प्र०-प्राण हरनेवाले काल के आने पर सद्बुद्धिवालों को बड़े यत्न पूर्वक तुरन्त क्या करना उचित है। उ०-समस्त विश्व के प्राणिमात्र को सुख प्रदान करनेवाले, और मृत्यु का नाश करनेवाले मुरारि (भगवान् श्री हरि के चरण कमलों का एकाग्रचित्त से चिन्तनन ही करना चाहिये ॥ २४ ॥

के दस्यवः सन्ति कुवासनाख्याः कः शोभते यः सदसि प्रविद्यः। मातेव का या सुखदा सुविद्या किमेधते दानवशात्सुविद्या ॥२५॥ कुतो हि भीतिः सततं विधेया लोकापवादाद्भवकाननाच्च। को वातिबन्धुः पितरश्च के वा विपत्सहायः परिपालका ये ॥२६॥ बुद्ध्वा न बोधयं परिशिष्यते किं शिवप्रसादं सुखबोध-

रूपम् । ज्ञाते तु कस्मिन्विदितं जगत्स्यात्सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपे ॥ २७॥ किं दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके सत्सङ्गतिर्ब्रह्मविचारणा च । त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः को दुर्जयः सर्वजनैर्मनोजः ॥२८॥ पशोः पशुः को न करोति धर्मं प्राधीतशास्त्रोऽपि न चात्मबोधः । किन्तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः ॥२९॥ विद्युच्चलं किं धनयौवनायुर्दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम् । कण्ठङ्गतैरप्यसुभिर्न कार्यं किं किं विधेयं मलिनं शिवार्चा ॥३०॥ अहर्निशं किं परिचिन्तनीयं संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम् । किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः कास्था न कार्या सततं भवाब्धौ ॥३१॥ कण्ठङ्गता वा श्रवणङ्गता वा प्रश्नोत्तराख्या मणिरत्नमाला । तनोतु मोदं विदुषां सुरम्यं रमेशगौरीशकथेव सद्यः ॥ ३२ ॥

प्र–डाकू कौन है । उ०–अनुचित वासनायें । प्र०–सभा में शोभा कौन पाता है । उ०–जो विद्वत्तापूर्ण सत्य प्रिय मधुर बोलता है । प्र०–माता के समान सुख देनेवाली कौन है । उ०–विचारयुक्त सद्विद्या । प्र०–देने से क्या वस्तु बढ़ती है । उ०–विद्या ॥ २५ ॥ प्र०–निरन्तर किससे डरना चाहिये । उ०–लोक निन्दा तथा संसारी वस्तु व्यक्तियों की आसक्ति से । प्र०–अत्यन्त प्यारा बन्धु कौन है । उ०–जो विपत्ति में सहायता करे । प्र०–पिता कौन है । उ०–जो भलीभाँति पालन पोषण करे ॥ २६ ॥

प्र०-क्या समझने के बाद कुछ भी समझना शेष नहीं रह जाता है । उ०–शुद्ध सच्चिदानन्द घन कल्याण स्वरूप परात्पर परतत्त्व परमपुरुष परमात्मा को । प्र०–किसको जान लेने पर (वास्तव) में जगत् जाना जाता है । उ०–सर्वात्मरूप पूर्णब्रह्म के स्वरूप को ॥ २७ ॥ प्र०–संसार में दुर्लभ क्या है । उ०–सद्गुरु, सत्संग, ब्रह्मविचार, सर्वस्व का त्याग और कल्याणरूप परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान । प्र०–क्या जीतना सबके लिये कठिन है । उ०–कामदेव को ॥ २८ ॥ प्र०–पशुओं से भी बढ़कर कौन है । उ०–जो वेद शास्त्रों का भलीभाँति स्वाध्याय करके धर्म का पालन नहीं करता और जिसे सभी शास्त्र पढ़कर भी आत्मज्ञान नहीं हुआ । प्र०–वह कौन सा विष है, जो अमृत से भी प्रिय जान पड़ता हो । उ०–नारी का सौन्दर्य । प्र०–शत्रु कौन है जो मित्र सा प्रिय लगता है । उ०–पुत्र इत्यादि ॥ २८ ॥ प्र०–बिजली

की भाँति क्षणिक क्या है । उ०-धन, यौवन, और आयु । प्र० सर्वोत्तम दान कौनसा है । उ०-जो न्यायपूर्वक परिश्रम से अर्जन किया गया हो, और सुपात्र को दिया जाये । प्र०-कण्ठगत प्राण होनेपर क्याकरना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये? उ०-पापमय अनुचित भाव नहीं करना चाहिये, और परमकल्याणस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्री हरि का मंगलमय नाम रूप लीला धाम का ध्यान स्मरण करना चाहिये ॥ ३० ॥ प्र०-रातदिन विशेषरूपसे क्या चिन्तन करना चाहिये । उ०-संसारी वस्तु व्यक्ति व्यवहारों का मिथ्यापन और परमकल्याण स्वरूप परमतत्त्व परब्रह्म परमात्मा को । प्र०-वास्तव में कर्म क्या है । उ०-जो भगवान् श्री हरि को प्रिय हो । प्र०-सर्वदा विश्वास किसमें नहीं रखना चाहिये । उ०—संसार—समुद्र में ॥ ३१ ॥ यह प्रश्नोत्तर नाम की मणिरत्नमाला कण्ठमें या कानों में जाते ही श्रीपति भगवान् श्री हरि और उमापति भगवान् श्री शंकर की कथा की भाँति विद्वानों को सुन्दर आनन्द बढ़ावें ॥ ३२ ॥

ॐ मानव–जीवन ॐ

सर्वजगत नियन्ता, चराचर व्यापक, भगवान् श्री सीताराम जी की, अहैतुकी अनुकम्पा से प्राप्त, यह मानवदेह प्रयत्न पूर्वक भगवत्भजन करके, आवागमन से मुक्त होने के लिये ही है । केवल भौतिक वस्तुओं का संग्रह करना, सुन्दर भवन निर्माण करवाना; परिवार के साथ जागतिक सम्बन्धों का व्यवहार करके ही अपने को तृप्त, सुखी एवं कृतार्थ मानना, और इन्द्रिय जन्य सुख स्वाद का अनुभव करना मात्र ही मानव का कर्त्तव्य नहीं है । मानवता के कर्त्तव्याकर्तव्यों का विचारपूर्वक बोध होना प्रत्येक मानव को अनिवार्य है । जिस मनुष्य को मानवता एवं मानव के कर्त्तव्यों का बोध नहीं है, वह मानव रूपमें पशु समान ही है ।

मानव जीवन क्या है :—मानवजीवन न तो केवल मनुष्य के शरीरका नाम है, और न केवल आत्मा का ही नाम है । अपितु आत्माका मनुष्य शरीरसे सम्बन्ध कालका ही व्यवहारिक शब्दों में मानवजीवन कहा जाता है । अब विचारना यह है कि मानवता की उपयोगिता और उसके कर्त्तव्य क्या हैं । अपने लिये, संसार केलिये और भगवान् श्री हरि के लिये उपयोगी हो जाना ही, मानवता की उपयोगिता है । तब यह प्रश्न होगा कि अपने लिये, संसार के लिये, एवं भगवान् श्री हरि के लिये उपयोगी कैसे बना जाये । समाधान यह है कि-श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् वेद शास्त्रज्ञ

और भगवान् के परमभक्त, महाभागवत सदाचार परायण, योग्य गुरुको प्राप्त करके, उनके द्वारा श्रीवैष्णवीय पंच संस्कारोंसे संस्कृत होकर श्रीगुरु सेवा करके अर्थपंचक तत्त्वत्रय, अकारत्रय, रहस्यत्रय, को प्राप्त करके, सदाचार पूर्वक भगवान् श्री हरि का भजन करने पर ही मानव अपने लिये, संसार के लिये, और भगवान् के लिये उपयोगी बन सकता है।

प्रत्येक मानव का परम कर्त्तव्य है कि—जीवन को सदाचार सम्पन्न करके, शरीर सम्बन्धी जागतिक सभी सम्बन्धियों से यथोचित व्यवहार करते हुये, अपने मनमें सततकाल भगवत् भजन स्मरण करते हुये जीवनयापन करे। समय की उपयोगिता भगवत् भजन स्मरण में ही है, जगत व्यवहार कुशलता में नहीं। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कोई भी शरीर या योनि ऐसी नहीं है कि-जिसे पाकर जीव भगवान् की भक्ति करके भवसागर से पार हो सके। अनन्तकाल से सभी जीवात्मायें चौरासी लाख योनियों में भटकती हुई महान् कष्ट का अनुभव कर रही हैं। और तब तक इसी प्रकार दुखानुभूति करेंगी कि—जब तक अनन्यभाव से भगवान् का भजन नहीं होगा। वात्सल्यसागर प्रभुकी कृपा से प्राप्त, यह मानवशरीर पाने का एकमात्र फल यही है कि-मन वचन कर्म से अपने को भगवान का मानकर, अनन्य प्रयोजन होकर श्री हरि भजन करे॥

व्यास स्मृति पृ३ में अ० २ श्लोक-३६ से ४७ तक लिखा है कि—रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत्। सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तर्गृहे वसेत्॥ ३७॥ एकांबरावृता दीना स्नानालंकारवर्जिता। मौनिन्यधोमुखी चक्षुः पाणिपद्भिरचंचला॥ ३८॥ अश्नीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने। स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम्॥ ३९॥ स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ। विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः॥ ४०॥ कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत्। रजोदर्शनतो याः स्युरात्रयः षोड़शर्तवः॥ ४१॥ ततः पुंबीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रेप्ररोहति। चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत्॥ ४२॥ गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौषणापित्र्यर्क्षराक्षसान्। प्रच्छादितादित्यपथे पुमान्गच्छेत्स्वयोषितः॥ ४३॥ क्षमालंकृदवाप्नोति पुत्रं पूजित लक्षणम्। ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः॥ ४४॥ गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत्। भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौभार्य्यापराङ्मुखः॥ ४५॥ सात्ववाप्यान्यतो गर्भं त्याज्याभवति पापिनी। महापातकदुष्टा च पतिगर्भ विनाशिनी॥ ४६॥ अर्थ-स्त्री ऋतुमती अर्थात् मासिक धर्म में प्राप्त होने पर दोष के भय से सबको त्याग दे। जहाँ कोई न देख सके ऐसे एकान्त घर में लज्जावती होकर निवास करे॥ ३७॥ केवल

एक ही वस्त्र को पहिन कर स्नान और आभूषणों को त्यागकर, दीन के समान मौन धारणकर नेत्र तथा हाथ पैर इनको न चलावे ॥ ३८ ॥ रात्रि के समय में अन्न का मिट्टी के पात्र में भोजन करे । प्रमाद रहित होकर पृथ्वी (भूमि) पर सोवे इस प्रकार तीन दिन बितावे ॥ ३९ ॥ तीन दिन के पश्चात् चौथे दिन सूर्योदय होने पर सवस्त्र स्नान करे, तदन्तर पति का दर्शन कर धर्म से शुद्ध होती ॥ ४० ॥ शौचजनक अर्थात् स्नानादिक क्रिया करके वह स्त्री पूर्ववत (प्रथम की भाँति) सभी कार्यो को करे । रजो दर्शन से सोलहरात्रियों तक ऋतुकाल रहताहै ॥ ४१ ॥ इन सोलहरात्रियों में पुरुष का बीज बिनाक्लेश अर्थात् बिना कठिनता या उपाय के शुद्धक्षेत्र में जमता है, अर्थात् स्त्री के गर्भाशय में गर्भधारण होता है । अस्तु इन सोलह रात्रियोंमें पुरुष को अपनी धर्मपत्नी के साथ गमन करना चाहिये । किन्तु यदि इन्हीं सोलहरात्रियों में पर्व का दिन आजाय तो पर्व के चारदिन तक गमन करना निषेध है । श्रीराम-नवमी, श्री गुरुपूर्णिमा, रक्षाबन्धन, श्रीकृष्णजन्माष्टमी; श्रीराधाजन्माष्टमी, वावनद्वा-दशी, विजयदशहरा क्वाँरशुक्लदशमी गंगादशहरा जेष्टशुक्लदशमी कार्तिक कृष्णचतुर्दशी श्रीहनुमान् जयन्ती दीपावली, अक्षयनवमी कार्तिक शुक्लनवमी, अगहनशुक्ल श्री सीताराम व्याह पंचमी, मकरसंक्रान्ति, बसन्तपंचमी, शिवरात्रि सभी ग्रहण एवं सभी एकादशी ये सभी पर्व दिन हैं । धार्मिक स्त्री पुरुषों को इन दिनों में गमन (अंगसंग) नहीं करना चाहिये । पर्व दिनों और पुण्य क्षेत्रों अर्थात् पावन तीर्थों में जाकर स्त्री प्रसंग करना निषेध है ॥ ४२ ॥ युग्म (सम) रात्रियों में रेवती, मघा, अश्लेषा इन नक्षत्रों में गमन अपनी पत्नी के साथ ऐसे स्थान में करे, जिस स्थान में सूर्य की किरण न जाती हो ॥ ४३ ॥ तब वह पुरुष शुभलक्षणयुक्त प्रशंसा करने योग्य पुत्रको प्राप्त करताहै । पूर्वोक्त रीतिके अनुसार स्त्री [अपनी धर्मचारिणी पत्नी]केसाथ गमन करनेपर वह पुरुष ब्रह्मचारी ही रहता है ॥ ४४ ॥ पुरुष यदि शास्त्र वर्जित निन्दनीय कर्म न करके ऋतुकाल में ही अपनी पत्नी के साथ गमन करे तो कुछभी दोष नहीं होता । और यदि ऋतुकाल में पुरुष अपनी पत्नी के साथ गमन नहीं करता है, तो वह भ्रूणहत्या अर्थात् गर्भ के गिराने के पाप का भागी होता है ॥ ४५ ॥ और यदि ऋतुमती स्त्री पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से गर्भ धारण करले तो वह पापिनी त्यागने योग्य है ॥ ४६ ॥ और यदि पुरुष अपनी—

सद्वृत्तिचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतितधर्मतः । महापातक दुष्टोऽपि स प्रतीक्ष्य-स्तया पतिः ॥ ४७ ॥ कोई पुरुष बिना ही कारण किसीअन्य स्त्री पर आकर्षित होकर

उसके कहने पर सदाचारिणी उत्तम चरित्रवाली अपनी स्त्री का परित्याग करता है, तो उसे महापातक लगता है, वह धर्म से पतित हो जाता है । वह पुरुष जब तक प्राश्चित करके उस महापातक से मुक्त न हो जाये, तब तक उस त्यागी हुई स्त्री को अपने पति की प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

नोट– विशेष ध्यान देने की बात है कि सृष्टि रचयिता प्रभुकी प्रेरणा से प्रेरित होकर ऋषियों ने जगत को मार्ग प्रदर्शन किया था । पूर्वकालिक ऋषि आज ऐसे लेखकों की भाँति कई ग्रन्थों को पढ़कर ग्रन्थ रचना नहीं करते थे । अपितु भगवत भजन करते २ भगवान की रुचि का पालनमात्र करते थे । पूर्वकालीन ऋषियों ने अपनी कल्पना से ग्रन्थ नहीं लिखे थे, उन्होंने तो विश्व सृष्टा विधायक का प्रेरणा से ही स्वानुभूति का उल्लेख किया था । उनके सिद्धान्तानुसार मार्ग पर चलना ही धर्म और न चलना ही अधर्म माना गया था । इस व्यास स्मृति के वचनानुसार सद्–गृहस्थ को रजोधर्म के समय स्त्री को छूना भी निषेध है । स्त्रीको एकवस्त्राहोकर सबसे अलग घरमें एकान्त मौन रहने का विधान है । उन तीनों दिनों तक न तो उस स्त्रीको कोई व्यक्ति छुये, और वह स्त्री भी किसी व्यक्ति या किसी खाद्यपदार्थ को न छुये । किन्तु वर्तमान समय में अपने को सभ्य माननेवाली पढ़ी लिखीं अधिकांश देवियाँ उन तीन दिनों में भी अपने शारीरिक एवं पारिवारिक सभी व्यवहारों को पूर्ववत करती रहती हैं, सभी से हँसकर बोलती मिलती हैं, सिनेमा देखती हैं, पढ़ाने जाती हैं. मोटर ताँगा रिक्शा या अन्य सवारियों में बैठने पर सभी को छूती हैं । ऐसा करना उचित नहीं है । प्रथम बात तो यही कि महिलायें स्वयं ही मौन होकर तीन दिन तक एकान्त घर में निवास करना प्रिय नहीं मानती हैं । कुछ बालिकायें जिनका पालनपोषण पुरानी सभ्यता में हुआ है; वे शास्त्राज्ञानुसार यदि रहना भी चाहती हैं । तो उन बेचारियों पर उनके पतिदेवता जो नवीन सभ्यता में जीवन पा रहे हैं, वह आपत्त मचाते हैं । अपने को बुद्धिजीवी मानने वाले बुद्धि के दरिद्र व्यक्ति इस्टन्डर्डमैन कहलाने वाले अपनी धर्मपत्नियों से कहते हैं कि कहो इन तीन दिनों में तुम्हारा शरीर अशुद्ध क्यों हो जाता है । बाहर से कोई भी अशुद्ध पदार्थ तो तुम्हारे शरीर में लगा नहीं, केवल तुम्हारे शरीर का अशुद्ध पदार्थ बाहर निकलता है, इसमें अशुद्धी की क्या बात है । यथा सभी लोग मलमूत्र का त्याग करते हैं, उसीप्रकार यह रजोदर्शन भी है । यह सब तो पाखण्ड है कि तीन दिन तक कुछ भी करना न पड़ेगा । कोई २ तो ऐसे धर्मवीर हैं कि अपनी स्त्री को डाँट फटकार लगाकर हठात भोजन बनाने को कहते हैं । यदि वह सुशील

महिला कहे आप हमसे दूररहिये हमें छूइयेमत, हमारा शरीर किसीवस्तु या व्यक्ति के छूने योग्य नहीं है । तब वह श्रीमान कहदेते हैं कि तुम पाखण्ड छोड़कर उठो, चलो भोजन बनाओ, हम देखेंगे कि पाप कैसाहै जो कि बिना किये लगजायेगा। और यदि लगेगा भी पाप तो हमी को लगेगा, तुमको तो नहीं लगेगा । सभीमनीषी (विचारक) विचारकरें कि ऐसे अधर्मपरायण पापमूर्ति जो कि पत्नीके परमेश्वर कहलाते हैं, वह महिला पतिआज्ञा माने या माने । इस अवसरपर पतिआज्ञा न माने तो पति-विमुखता का महान्पाप और यदि पतिआज्ञा मानकर भोजन बनाकर खिलावै तो शास्त्राज्ञारूपी सेतु समाप्त होता है, जिसके आधारपर पति पत्नी का परमेश्वर माना जाताहै । विशेष ध्यानदेकर विचारिये कि पति पत्नीका सम्बन्ध पशुओंकी भाँति पेट भरने या विषय व्यवहार केलिये ही नहींहै । यह सम्बन्ध तो सुखपूर्वक जीवनविताते हुये शुभ धर्म कर्म करके संसार चक्रसे मुक्त होने केलिये है । पतिकहलाने का अधिकार उसी पुरुष को है, जो शास्त्राज्ञानुसार स्वयं भी सन्मार्ग में चलकर भगवत्भजन करके अपना कल्याण करे । और अपनी पत्नीको भी शुभ कर्म धर्म की शिक्षा देकर श्री हरिभजन में लगाकर उसका भी कल्याण करदे । तबतो पति परमेश्वर है यह कहना यथार्थ है, अन्यथा पशुवत जीवन वितानेवाले पति स्वयं ही घोर नरक में पड़ेंगे । तब वह बेचारे अपनी पत्नीका कल्याण क्या सकेंगे । जो व्यक्ति अपना कल्याण करने में दक्ष (कुशल) नहीं है । वह दूसरे का कल्याण कर देगा वही लोग मानेंगे । जिनने बुद्धि को बेचकर चाय पीली होगी, अथवा चाट खा ली होगी । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह बात नहीं मानेगा । अस्तु मासिकधर्म के समय सभी महिलाओं को तीन दिनतक घर के एकान्त में शान्तचित्त से भगवत्नाम स्मरण करते हुये विताना चाहिये । और पढ़े लिखे शिक्षित पुरुषों को भी उन तीनदिनों में स्त्री से स्पर्श नहीं करना चाहिये । शास्त्राज्ञा मानना ही मानवता है । अन्यथा जंगली पशु और मानव में कोई अन्तर नहीं है, दोनों समान हैं । गृहस्थाश्रम एक तपोवन है इस तपोवन में रहकर आवश्यक होनेपर उचित रूपसे विषयानुभूति करते हुये भगवान् का भजन करते हुये जीवनयापन करना तो ठीक है । किन्तु इन्द्रियों के गुलाम बनना उचित नहींहै । सर्वदा सत्यका पालन करना चाहिये, शास्त्रीय सिद्धान्त है कि—सत्यमेव जयते । मानव के पास सन्तोष ही महान् सम्पत्ति होनी चाहिये । परिश्रम करने पर भी अभीष्ट पूर्ति न होनेपर भगवान् की प्रार्थना दीन होकर करो । भगवत् प्रार्थना में असीमबल है । प्रार्थी की प्रार्थना शुद्धभाव से होने पर अवश्यमेव

भगवत् कृपा दृष्टि की वृष्टि होती है। मानवमात्र का परम कर्तव्य है कि प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर भगवत् चिन्तवन करे। अपने से बड़े श्रेष्ठ पूज्यों का समादर करे। सामाजिक या धार्मिक कार्यों में हानि होनेवाले कार्य किसी को भी नहीं करना चाहिये। सद्ग्रन्थों का स्वाध्य एवं अध्ययनशील होना चाहिये। पापी से घृणा न करके पापकर्मों से सदा बचना चाहिये। कभी भी अनुचित बातोंका प्रचार नहींकरना चाहिये। समाजसे अच्छी बातें तो सीखले, किन्तु समाजमें फैली [प्रचलित] कुरीतियों को ग्रहण नहीं करना चाहिये। अपने धर्ममें दृढ़श्रद्धा विश्वास प्रेम रखना तो सर्वथा उचित है, किन्तु दूसरे धर्मकी निन्दाकरना आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। सर्वदा सत्य तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

भगवत्कृपा से प्राप्त पदार्थों को अपने प्रियजन सम्बन्धी अतिथि असहायों को बाँटकर खाना चाहिये। हमें संसारमें रहने से हमारी कुछ भी हानि नहीं है किन्तु संसार हमारे अन्दर न रहे। आशक्तिपूर्वक भोग्यपदारथों का उपभोग करना बन्धन कर प्रधान कारण और राग रहित भोग्य पदारथों का सेवन मुक्ति का साधक होता है। विषयों के सेवन करने की अपेक्षा विषय न करते हुये भी विषयों का चिन्तवन करना अधिक हानिकर है। संसार की भीड़ से निकलकर भागना आवश्यक या अनिवार्य नहीं है। अपितु अपने अन्दर से संसारको निकालदेना अत्यधिक आवश्यक अनिवार्य है। अभीष्ट की पूर्ति में मन बुद्धि चित की एकाग्रता और संलग्नता की परमावश्यकता होती है। भक्त ने क्या दिया, भगवान् यह न देखकर उसके भावको हो देखते हैं। अस्तु भावना पूर्वक भगवत् भजन करना ही मानवमात्र का परम पुरुषार्थ है। वशिष्ट स्मृति अ० २ श्लोक १-२

चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रा। त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्याः ॥ १ ॥ तेषां मातुरग्रेधिजननं द्वितीयं मौंजी बन्धनम्। तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्चयते ॥ २ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण हैं। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन द्विजाति हैं। इन तीनों का जन्म प्रथम माता से और और दूसरा जन्म यज्ञोपवीत से होता है। दूसरे जन्म में गायत्री माता और आचार्य पिता कहा गया है। आचार्य वेदको पढ़ाता है, इसलिये आचार्य को पिता कहागया है ॥ यथा—वेद प्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ॥ पुनः व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २१-२२ में भी कहा है कि—द्वे जन्मनी द्विजातीनां स्वात्प्रथमं तयोः। द्वितीयंछन्दसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥ २१ ॥ एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्य दोषतः। श्रुति

स्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २२ ॥ ब्राह्मण; क्षत्रिय वैश्य इन तीनों जातियों के दो जन्म होते हैं। प्रथम माताके गर्भसे, दूसरा गुरुके निकट विधिसहित वेद माता (गायत्री) को ग्रहण करने से ॥ २१ ॥ इसप्रकार से यह अन्य दोषोंसे रहित होकर द्विजत्वको प्राप्तहोकर श्रुति स्मृति और पुराण इनके पढ़नेयोग्य होता है ॥ २२ ॥

अब पाठक ध्यानदें। मनुष्यको उचित है कि अपनी पाणिग्रहीता पत्नीसे ऋतु काल (मासिकधर्म से मुक्त होने पर) में पर्वदिन बचाकर अंगसंग [विषयानुभूति] करे। जिस दिनसे पत्नीको गर्भाधान होजाये, उसदिन से जबतक सन्तानका जन्म न हो जाये तबतक पत्नीसे अंगसंग [विषयभोग] न करे। गर्भाधानसे सन्तान उत्पन्न होने के बीचके समयमें अपनी पत्नीको भगवान् और भक्तोंकी उत्तम कथायें श्रवण करानी चाहिये। भगवान् के सुन्दर चित्र दिखाना चाहिये, और भगवन्नाम गुण यश का कीर्तन सुनाना चाहिये। जिसके फलस्वरूप सन्तान भी भगवत् भागवतों में श्रद्धा प्रेम करेगी। गर्भाधान होने के बाद गर्भवतीमहिला को शुद्धसात्विक पदार्थ सेवन करना चाहिये। मांस, मदिरा, अंडा, लहसुन, प्याज, बासा जल हुआ, अधपका भोजन न पाकर, घी दूध मक्खन अन्न साग फल इत्यादि सात्त्विक पदार्थोंको शुद्धता पवित्रतापूर्वक सिद्ध [बना] करके भगवान् को अपर्ण करके भगवत्प्रसाद पतिको पवाने के पश्चात् पाना चाहिये। सन्तान उत्पन्न होनेपर पति पत्नी को आवश्यकपूर्ण सुविधाओं की व्यवस्था करे। उस देवीका कर्तव्य है कि अपनी सन्तान बालक या बालिका जो भी हो। शैशवास्था [बालकपन] से ही उसको गन्दी बातें न सिखावें, न गन्दी आदतें डालें, बालकों को भगवान् के नामका कोर्तन सुनावें। उनसेभी कीर्तन करवावें। भगवान् की कथायें, भक्तोंके चरित्र सुनावें। भगवान् की प्रार्थना स्तुतियाँ याद करावें। फिल्मों के गाने उपन्यास पेपर इत्यादि न सुनावें।

भगवान् का नाम जपना, पूजाकरना, श्रीरामायणजी, गीता भागवत् इत्यादि सद्ग्रन्थोंका पाठ करना सिखावें। सभी बच्चोंकी श्रीहनुमान् चालीसा अवश्यरटादें। श्रीहनुमानजी की दयासे बालक सद्गुणसम्पन्न बुद्धिमान धर्मात्मा और सदाचारी होंगे। बालकों को धर्ममयी वार्तायें धर्मात्मा पुरुषों की कहानियाँ सुनावें, उचित समय पर बालक बालिकाओं को विद्यालय [स्कूल] में विद्याध्यन करने को भेजदें। बच्चों के मनोरंजनार्थ अनेक प्रकारके खेल सिखावें। परिश्रम होनेवाले खेल खेलने से बालकों का स्वास्थ ठीक रहता है। सिनेमा नाटक ड्रामा इत्यादि देखने का व्यसन न लगने दें। बालक भी जब कुछ पढ़ने लगें, कुछ समझदार हो जायें, तो उनका कर्तव्य है कि

प्रातःकाल उठकर माता पिताको चरणस्पर्श करके प्रणाम करें। माताओं को उचितहै कि बालकों को सिखावें कि अपने से बड़ोंका सम्मान करो। छोटे बच्चोंको प्यार दुलार करो, मन लगाकर खूब ध्यानपूर्वक पढ़ो। बालक बालिकायें ब्याह होनेके पूर्व ब्रह्मचर्य का पालन करें। ब्रह्मचर्य ही अमृतजीवन है। जिस बालक का ब्रह्मचर्य छोटी अवस्थामें पतन होता है, वह बालक बालिकायें, अधिकांश दुर्बल एवं रोगी हो जाते हैं। माता पिताका कर्तव्य है कि बालक बालिकाओं का उचित समयपर ब्याह अवश्य ही करदें। वर्तमान में नवीन पद्धति प्रचार होरही है कि बालिकायें जब बी० ए० एम० ए० न करलें तबतक ब्याह न किया जाये। इसीका यह भयंकर परिणामहै कि अधिकांश बालिकाओं के जीवन में चारित्रिक दोष उत्पन्न हो जाता है। इससे बचाने का एकमात्र उपाय है कि १२ वर्ष के बाद १८ वर्ष के अन्दर बालिकाओं का ब्याह अवश्यही कर देना चाहिये। ध्यान रहे कि १२ वर्ष के पूर्व ब्याह करना भी हानिकर ही होगा बालिकाओं को खूब पढ़ाया जाये, किन्तु उनके चरित्रपर सर्वदा विचार पूर्वक ध्यानदेनाचाहिये। उचित समयपर ब्याह न करनेपर बालकबालिकाओं में चारित्रिक दोष उत्पन्न होने में उनके माता पिता का ही दोष है। क्योंकि सभीलोग आवश्यकता की पूर्ति अनुचित या उचित रूपमें करते ही हैं। तब अवस्था सम्पन्न बालकायें भी अपनी आवश्यकता की पूर्ति भी उचित या अनुचित रूपमें करेंगी ही; अस्तु समयपर अनिवार्य रूपसे ब्याह करदेना चाहिये।

ब्राह्मणों के बालकों का ५ वर्ष से १२ वर्ष में क्षत्रियकुमार आठ वर्षसे १६ वर्ष तक वैश्योंके बालकोंका १२ से १८ वर्षकी अवस्था के अन्दर यज्ञोपवीत अनिवार्य रूपसे हो जाना चाहिये। द्विजाति कहलानेवाले त्रयवर्णों को ब्रह्मगायत्री का जप निरन्तर अनिवार्य रूपसे करना चाहिये। द्विजातियों को नित्य वैदिक संध्या करनी चाहिये। सभी मनुष्यों को सदाचार पूर्वक चरित्रवान होकर भगवद्भजन करना चाहिये॥

बालक बालिकाओं के चरित्र निर्माण का उत्तरदायित्व माता पिता पर है, ध्यान रहे, माता बालकों को जो बतादेती है, बालक जीवनभर उसी बातको सत्य मानते हैं। बालक नहीं जानते हैं कि हमारा पिता पितामह चाचा ताऊ मामा नाना भाई बहिन कौन है। माता ही बतलाती है कि—ये आपके पिता हैं, ये चाचा हैं, ये ताऊ हैं, ये बाबा हैं, ये नाना हैं, ये बहिन ये भाई ये मामा नाना हैं। बालक उन सम्बन्धियों को जीवनभर माताके बतलाने के ही अनुसार मानता और व्यवहार

करता है । माता ही मानवकी जननी है । अतः माताओं के ही अनुसार बालकोंका जीवन निर्माण होता है । क्योंकि साँचा जैसा होगा, उसमें ढलनेवाली वस्तु भी तद-नुसार ही आकार प्रकार धारण करेगी । माता मानव का साँचा है; अतः अपनी सन्तान के कल्याण के लिये माताको सदाचार एवं सद्गुण सम्पन्न होना चाहिये । मातापिता जैसे बोलेंगे, जैसे व्यवहार करेंगे, बालकबालिकायें भी वैसे ही सीखेंगे । बच्चों के बनने बिगड़ने का उत्तरदायित्व माता पिता पर ही है । यदि आप बालकों को झूठ बोलना, चोरीकरना, मारना पीटना गालीदेना, सिखायेंगे तो सोचलेना कि भविष्यमें आपको माथापोट पीटकर रोना पड़ेगा, तब बालकों को दोष न देना । ध्यान रहे कि पाँच वर्ष तक बालकों का दुलार तो करना चाहिये, किन्तु उनके जीवन में अवगुण अनाचारों का जन्म नहीं होना चाहिये । पाँच वर्ष से १६ वर्ष तक भोजन वस्त्र की सुविधा देकर हृदय में दुलार और बाहर से कड़ी दृष्टि रखनी चाहिये, जिससे उनमें अनुचित अभ्यास न बनने पाये, यदि आप इस समय भी उनके मोहमें फसकर उन्हें मनमाना रहने देंगे तो वो निश्चय ही बिगड़ जायेंगे, तब आप कहेंगे कि हमारा बालक बहुत ही नालायक है किसी की बात नहीं मानता है । बालकोंपर कड़ी दृष्टि रखने का उनको गाली देना या मारना पीटना नहीं है । गालीदेने या मारने से बालकों कासुधार न होकर वे और भी पतित, भयभीत, तथा कुमार्गगामी हो जाते हैं । केवल उनके दोषों को देखते रहें, वे कोई अनुचित कर्म न करने पावें, कोई भूल हो जानेपर गम्भीरतापूर्वक प्रियता के साथ कोमलता से समझाबुझाकर उचित मार्गपर लाना चाहिये आवश्यकतानुसार डाँटा जावे, किन्तु अपशब्दोंका प्रयोग न किया जाये । कितने लोग बालकों से डाँटकर कहते हैं कि हरामी, सुअर या गधे इन शब्दों का बहुत ही गलत प्रभाव पड़ता है । जब आप बालकोंको गधा सुअर हरामी कहोगे, तो वे भी उन्हीं शब्दों को सीखलेंगे, फिर अपने बालकों को भी वैसे ही डाँटेंगे, और स्वयं भी गधा एवं सुअरवत् आचरण अपनायेंगे । ध्यानरहे प्रथम मातापिता अपना सुधार करें, तभी बालकों का सुधार कर सकेंगे, यदि आप अपने किशोर या युवावस्था सम्पन्न बालकों के समक्ष भी विषय लोलुप बने हैं, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते हैं तब सोचिये कि आपके बालकोंपर कैसा प्रभाव पड़ेगा ।

यदि आप बीड़ी सिग्रेट पान तम्बाकू गाँजा भाँग मदिरा मांस आदि सेवन करते हैं तो आपके बच्चे भी इन दुर्व्यसनों को शिकार होंगे ही आपके कोटि प्रयत्न करने पर भी वे आपकी बात कदापि न मानेंगे । यदि आप ईर्ष्या, क्रोध, काम, मद, मत्सर, छल, कपट, असत्यभाषण, हिंसा, चोरी व्यभिचार, अशौचपन, मलीनता नहीं

छोड़ते हैं, तब सोचिये कि आपकी सन्तान इन कुकृत्यों से कैसे बच पायेगी । क्या आप यह नहीं जानते हैं कि आपके बालकबालिकाओं के शिक्षापाने के लिये आपका घर ही प्रधान पाठशालाहै । अथवा यों कहो कि बालक जैसे वातावरण में पालेपोषे जातेहैं, उनका भविष्य जीवन तदनुसार ही निर्माण होना स्वाभाविक है। ध्यानरहे ! आपका नित्य ही नृत्य, नाटक, सिनेमा देखनेमें और क्लबमें नम्बर सबसे आगे रहता है, ताश, जुआ, चौसर में तो आप सभी काम भूले रहते हैं, किन्तु शोक है कि फिर भी आप अपनी सन्तान को चरित्रवान, देशभक्त, कर्तव्य परायण और यशस्वीबनाने का स्वप्न देखते हैं । यद्यपि आपके घरमें सुन्दर सुशील पतिव्रत तत्पराधर्म पत्नी है, तथापि आप किसी भी नवयुवती सौन्दर्यवती महिलाको देखकर आपे से बाहर होकर उसे सुनाकर सिनेमा के गाने गाते हैं कि- जिसे सुनकर वह समझ जाये कि आप शिक्षित पशु हैं । समय मिलने पर यदि आपका वश चले तो उस सुशीलमहिला के साथ अवैधानिक ढंगसे विषय विलाश करके ही अपने को कृत्कृत्य एवं सभ्य व्यक्ति और नैतिक मानते हैं, तथापि ऐसा स्वप्न देखते हैं कि हमारे बालक श्री राम जी के सदृश्य एकपत्नीव्रतधारी और हमारी बालिकायें श्री जानकी जी के समान पतिव्रता हों । क्या त्रिकाल में कभी यह सम्भव है, कि आपकी सन्तान का सुधार होगा, आपके बालक धर्मात्मा भगवत्भक्त होंगे । आपके प्रतिबिम्ब बालक जब स्वेच्छाचारी बनेंगे तब आप कहेंगे कि क्या करें, हमारे लड़के तो कलियुगी निकलगये । किन्तु आप सोचिये कि क्या आप कलियुगी के बाप नहीं हैं । अस्तु बालकों का सुधार करने के पूर्व आपको श्रीदशरथ जी एव श्री जनक जी के समान धर्माचरण, देवाराधन, भगवत् उपासना, करनी होगी, और आपको पत्नी को श्री कौशल्या जी एवं श्री सुनैना जी के समान आपका अनुगमन करना होगा तभी आपको श्री राम जी एवं श्री सीता जी के सदृश्य मातृभक्त पितृभक्त देशभक्त गुरुभक्त चरित्रवान एवं यशस्वी बालक और बालिकायें मिल सकते हैं । किन्तु आप चाहते हैं कि हम सातबजे सोकर जगें, तुरन्त चाय तैयार मिले, उसे पीकर रेडियो के गाने सुने, आठबजे कुछ जलपान करके पेपर पढ़लें, दशबजे पशुओं की भाँति भक्षा-भक्ष्य विचार रहित मनमाना खाना खालें, दो चार घंटे दोस्तों के साथ दुनियाँ भर की झूठी गप्पें सुनें और कहें । सायंकाल सिनेमा और क्लबोंमें वनमानुषों की भाँति निर्लज्ज होकर व्यवहार करें, रात में घर आकर सो जायें । सोचिये तो सही कि—क्या मानव की मानवता का यही फल है ।

ध्यान रहे ! कि अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त सभी छोटी या बड़ी तथा

समान अवस्थावाली देवियों में पुत्री, बहिन, एवं माता का ही भाव रखना चाहिये। इसी प्रकार महिलाओं को उचित है कि—अपने से छोटे बालकों को अपने पुत्रवत् भाव से देखें, समान या कुछ छोटे एवं बड़े बालकों को भाई तथा वृद्धजनोंको पिता समान मानें। वेश्यागमन या स्वेच्छाचरण करनेवाले सोचें तो सही कि उन्हें अपनी पत्नी केसाथ विषयमें जो रस मिलताहै, अन्यत्र भी वही रस मिलताहै या कुछ विशेषता है। तब वह स्वयं ही अनुचित से बचेंगे। ध्यानरहे ! आपके कपड़े गन्दे रहते हैं, दांत मैले रहते हैं बड़े बड़े नख और आपके घर द्वारमें कूड़ा रहताहै तो सोचिये कि उस वातावरण में पलनेवाले बच्चों का जीवन कैसा होगा। अस्तु शरीर, वस्त्र तथा घर द्वार स्वच्छ रखना चाहिये। स्वच्छता से स्वाभाविक ही नीरोगता एवं प्रसन्नता होती है ॥

विचार कीजिये कि यदि आप किसीको धोखा देकर उसकी कोई वस्तु ले लेते हैं, बेईमानी करके या रिश्वत लेकर धन जमा करते हैं, गरीबों के साथ अन्याय करते हैं, किसी की चोरी करलेते हैं, अथवा चुरवा देते हैं परस्त्री गमन करते हैं, धार्मिक व्यक्ति को पाखण्डी कहते हैं, भगवत् भक्तोंका तिरस्कार करते हैं, स्वयं भगवान् की उपासना न करनेपर भी उपासकों की समालोचना करतेहैं। तो आपसाक्षात हिरणाक्ष रावण या कंश की ही मंजुल मूर्ति हैं। तथापि आप अपने को ही सर्वश्रेष्ट विद्वान्, नीतिज्ञ धर्मात्मा मानते हैं, तो मानिये, किन्तु इसका परिणाम अन्तमें समझोगे। यदि बालक बालिकायें अपने पिता माता का शासन नहीं मानते, मनमाने चलते हैं, तो वे भूलरहे हैं। सन्तान का परम कर्तव्य है कि मातापिता की सतशिक्षा माने, उनकी सेवा करें, बड़ों का सम्मान करें, सदाचारी, सत्यवादी, निश्छल, चरित्रवान एवं अहिंसक बनें। यदि आप मातापिता की सेवा न करके उनको अपशब्द कहतेहैं, उनकी झूठी निन्दाकरके तिरस्कार करते हैं, तो भलीभाँति सोचलेना कि आपकेबालक भी आपके साथ यही व्यवहार करेंगे। तब आपको कैसा लगेगा, किन्तु महान शोक की बात है कि आपतो अपने मातापिता का तिरस्कार करते हो, और अपने बालकोंसे आशा करते हो कि यह मेरी आज्ञा माने, सर्वदा हाथ जोड़े खड़ा रहे, भगवान् के समान हमारी सेवा करे। यह भारी भूलहै। यदि आप अपनी सन्तानसे सुख चाहते हैं, तो अपने माता पिता को सुख देना आपका परम कर्तव्य है। बालक यदि आपको पिता की सेवा करते देखेगा तो बिना कहे आपकी सेवा करेगा, आप यदि मातापिता को फटकारते या मारते हैं, तो आपका पुत्र भी उसी परम्परा का भक्त होगा, अस्तु

माता पिता की सेवा करना प्रत्येक मानव का परम कर्तव्य है ॥

ध्यान दीजियेगा ! आपके छोटे भाई, बहिन इत्यादि से कुछ भूल हो गई है, तो उनको प्रेम पूर्वक समझा दीजिये, मारिये पीटिये नहीं, मारने से उनके हृदय में आपके प्रति स्नेह का अभाव और वैमनस्ता का जन्म होगा, जो भविष्य में कलहका घर होजायेगा । आपके बड़ेभाई आपसे अप्रसन्न रहतेहैं, इसमें आप उनका दोष और अपनेको निर्दोष मानते होंगे, यह आपकी भूलहै बिना अपराधके कोई भी किसी से व्यर्थ में वैर नहीं बढ़ाता, आपयदि सर्वथा निर्दोषहैं, तो शान्त रहिये, भाईसाहब आपके अनुकूल होजायेंगे, आप उनकी निन्दा न कीजिये, बड़े भाई को उचित है कि छोटे भाई को पुत्रवत् दुलारपूर्वक सारी सुविधाओं का विधान बनावे, छोटे भाई का कर्तव्य है कि बड़े भाई का पिता के समान सम्मान करे, उसका शासन माने । यदि आप अपनी धर्मपत्नी को कष्ट देतेहैं, उसे गाली देते या मारते पीटते हैं, अपनी स्त्री के रहते हुये भी परस्त्री गमन करते हैं, अपनी स्त्रीके सुखदुखमें उसकी सहायता नहीं करतेहै, उसे सद्शिक्षा नहींदेते हैं, बैल घोड़ा गधे कीभाँति पेटभर भोजन करके विषय सेवनमात्र के लिये सम्बन्ध रखतेहैं तो आप बहुत ही भूल रहेहैं । विचार करिये कि आपको तो पतिव्रता स्त्री होनी चाहिये, किन्तु आप एकपत्नीव्रती न होकर कुत्ते की भाँति अनेकघरों की जूठी पत्तल चाटते हैं, यह महानभूल है । यदि आप श्रीरामजी केसमान एकपत्नीव्रती बनेंगे तो विधाथके विधानसे आपको सुशील स्त्री प्राप्त होगी, आप रावण बनकर तो मन्दोदरी के समान स्त्री कोही प्राप्त कर सकते हैं, पतिव्रता देवियों की स्वप्न में प्राप्ति न होगी । पत्नी रजस्वला होनेकेबाद महीना में एक दो वार से अधिक विषय सेवनकरना अपने जीवन के साथ शत्रुता करनाहै । ध्यानरहे कि पत्नी की आवश्यकता की पूर्ति करना ही आपका कर्तव्यहै । उसकी प्रत्येक बातको मन्त्रवत सुनकर परिवार के पूज्य लोगों से नाराज होनां या उनका तिरस्कार करना उचित नहीं है । भोजन बनाने में पत्नी से देर होगई या नमक अधिक या कम होगया तो उसको समझा दीजिये, मारिये पीटिये नहीं । पत्नी यदि रोगी, बन्ध्या अथवा कमजोर हो गई है, तो उसका अपमान नहीं कीजिये; किसी प्रकार उसका निर्वाह कीजिये । दो विवाहनहीं करना चाहिये, यदि भूलसे करहींलिये,तो दोनोंके साथ समान व्यवहार करिए, अन्यथा दोष के भागी बनना होगा ॥

यदि आप पत्नी हैं, तो पतिको भगवत् भाव से सेवा करते हुये पतिव्रत का पालन करिये । सासु, श्वसुर जेठ देवर, ननद इत्यादि सभीके साथ उचित व्यवहार